मुक्ति के पथ पर

(धार्मिक कथा संग्रह)

केशरीचन्द सेठिया

प्रकाशक

सेठिया जैन ग्रन्थालय

बीकानेर

प्रथम आवृत्ति—१०००

मुद्रक

मगल मुद्राणालय

बीकानेर

चिरं॰ केशरीचन्द ने धर्म कथाओं में रुचि
दिखाई है और मुझे धर्म अत्यन्त प्रिय है
इस लिए स्वभावत मेरा आशीर्वाद उसे
प्राप्त है। यह युग धर्म विरोधी युग कहा
जा सकता है और विशेषत: नवयुवकों
में धर्म के प्रति अनास्था की वृद्धि हम
जैसे लोगों के लिए चिन्ता का विषय
है उस समय मेरे नवोदित पौत्र द्वारा
धर्म के प्रति श्रद्धालु होना मुझे कितना
आह्लाद कर है मेरे अंतरतम से निकले
आशीर्वाद के इन दो शब्दों से उसका मूल्य
आंका जा सकता है। जिनेश्वर देव उसे
इस पथ में यशस्वी करें।

बीकानेर
वीर जयंती
वीर सं॰ २४७६

भैरोंदान सेठिया
३१ - ३ - १९५०

समर्पण

जिनकी पुनीत छाया से मेरे जीवन का निर्माण
हुआ, जिनकी धर्म-भावनाओं से मेरा जीवन
अनुप्राणित है, उन पूज्य पितामह श्री
भैरोंदानजी सेठिया को उनके
संस्कारों का यह सुफल उन्हीं
को सादर समर्पित।

सूची

	विषय	क्रम संख्या
१	अभिग्रह	३
२	कला का रूप	६
३	भगवान की वाणी	१०
४	परित्यक्त	१६
५	अतिमुक्त	२४
६	तपस्या: कसौटी पर	३१
७	प्रतिबोध	५६
८	मिलन	६०
९	अमृतवर्षा	७३
१०	पश्चात्ताप	७७
११	मुक्तिके पथपर	८४
१२	अनुगमन	९२
१३	बाहुबली	१००
१४	प्रकाश किरण	१०५
१५	न्याय	११०
१६	चांडाल श्रमण	११७
१७	धर्मकी रेखा	१२५
१८	दंड	१३६
१९	उद्‌बोधन	१४३
२०	सत्यवती	१५०
२१	अनावरण	१५८

अपनी बात

आपको याद होगा कुछ समय पहले आपकी सेवामें 'अपरिचिता' नामक सामाजिक कहानीसग्रह लेकर आया था। उसको पेश करते समय दिलमें एक तरहकी कशमकश थी। प्रथम प्रयास था न वह। वैसा होना स्वाभाविक भी था। आज वह बात नही है, तो भी एक नई चीज लेकर आया हू। पाठक उसे अपनायेंगे तो प्रोत्साहन मिलेगा। वही तो मुझ जैसे लेखकोका बल है और सबल भी।

यह संग्रह जैनधर्ममें आई कथाओका आधार लेकर तैयार किया गया है। इनमेसे कुछ कहानिया दैनिक और मासिक पत्र-पत्रिकाओमे प्रकट हो चुकी है। कुछ हितेच्छुओ की यह इच्छा रही कि वे पुस्तक रूपमें निकले और उसीका यह नतीजा है। समयके साथ-साथ कहानियोंमे भी परिवर्तन होना स्वाभाविक था। जब-जब मैंने इन्हें पढा, कुछ-न-कुछ परिवर्तन होता ही गया। अतः मासिक पत्रिकाओंमे प्रकट कहानियो तथा इनमे कुछ परिवर्तन नजर आये तो कोई आश्चर्य नही।

इन कथाओका बीज शास्त्रोमें है। उसीको पल्लवित करके प्रस्तुत रूप दिया गया है। इससे पाठकोकी श्रद्धामें किसी तरहकी कमी न

आयेगी, प्रत्युत उत्तरोत्तर विस्तार ही होगा। अन्य लेखकोने भी इस ओर ध्यान दिया है किन्तु वे अगुलियोमे गिनने जितने ही हे। हा, गुजराती साहित्यमें इस ओर अच्छी प्रगति हुई है और अगर निकट भविष्यमे भी यही प्रगति रही तो कुछ फल होगा।

यह ध्यान बराबर रखा गया है कि इसकी भाषा पण्डिताऊ न होकर सरल सुबोध रहे ताकि महिला जगत् भी अधिक-से-अधिक लाभ उठा सके। मै अपने प्रयासमे कहा तक सफल हुआ हू, यह तो पाठकोपर ही छोड देता हू, जिनका अब मुझसे कही अधिक इसपर अधिकार है।

अन्तमें मै अपने पितामह श्री भैरूदानजी सेठिया तथा गुरुवर श्री शम्भूदयालजी सकसेना का भी आभार मानता हू जिन्होंने हमेशाकी तरह आशीर्वाद तथा समय-समयपर महत्वपूर्ण परामर्श देकर मुझे उत्साहित किया। अपनी जीवनसगिनी मरूमायाको भी धन्यवाद दिये बिना नही रह सकता जिनकी अनवरत प्रेरणाके कारण ही यह पुस्तक इतनी जल्दी लिख सका। उन ग्रन्थो तथा ग्रन्थकारोका भी उपकार मानता हू जिनसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी रूपमे मुझे प्रेरणा मिली है।

विशिष्ट सहयोगियोमें श्री घेवरचन्दजी बाठिया सधन्यवाद उल्लेख्य है, जिनके प्रयत्नसे पुस्तक इस रूपमें प्रेससे प्रगट हो सकी है।

—केशरीचन्द

पूर्वापर सम्बन्ध

बीकानेरके रईस सेठिया भैरोदानजी हमारे विशेष परिचित और सविशेष स्नेही स्वजन हैं। लगभग आज बीस-पच्चीस बरससे हमारा और उनका स्नेह-सम्बन्ध चला आता है। वे एक बडे व्यापारी है और हम शास्त्रके सशोधन, सम्पादन और अध्ययन-अध्यापनमें रस रखते हैं। सेठियाजी व्यापारी हैं, उपरान्त वे शास्त्रके स्वाध्यायी भी हैं इसी कारण हमारा और उनका स्नेह-सम्बन्ध निर्व्याजभावसे अविच्छिन्न रूपसे चला आता है।

थोड़े दिन पहले उनकी तरफसे पत्र आया कि हमारे पौत्र भाई केशरीचन्दजीने 'मुक्तिके पथपर' के नामसे थोडी कहानिया लिखी है, उसका उपोद्‌घात आपको लिखना होगा। सेठियाजीने यह भी लिखा कि आजकल नवयुवकोमें धार्मिक सस्कार कम होते चले हैं, ऐसी स्थिति में खुद हमारे घरानेके हमारे पौत्र द्वारा ये धार्मिक कहानिया लिखी हुई देखकर मै सविशेष प्रसन्न हू। इसी कारण ही आपको उपोद्‌घात लिखनेका खास आग्रह करता हू।

मेरे पास कहानियोके फरमे सेठियाजीने भेज ही दिये। मै कहानिया पढ गया। मेरी इच्छा हुई कि कहानियोके लेखकका कुछ परि-

चय पा सकू और कहानियो के सबधमें उनसे बातचीत कर सकू तो अच्छा हो। लेखकका उनके शब्दसे ही परिचय पाना शक्य था। वे उन दिनो अपनी पेढ़ीपर कलकत्ते जा चुके थे अत मैंने सेठियाजीसे उनका पता मगा कर चि० भाई केशरीचन्दजीको एक पत्र लिखा जिसमें मैंने लेखकके निजी सम्बन्धमे ओर कहानियोके सम्बन्धमे थोडे प्रश्न पूछे थे। उक्त पत्रमें मुझे उनके जीवन और विचारधारा का यथार्थ दर्शन हुआ।

बाबू प्रेमचन्दजीकी तथा श्री शरदबाबूकी कई कहानिया मैंने पढी है तथा उन दोनोके जीवनकी कथा भी मेरे पढनेमें आई है। प्रेमचन्दजी का तथा शरदबाबूका जीवन उनकी कहानियोमे थोडा बहुत जरूर प्रतिबिम्बित है। रामायणके रचयिता श्री तुलसीदासजीकी भक्तिमय उपासना उनके रामायणमें पद-पदमे दिख पडती है। समराइच्चकहा (समरादित्य कथा) नामकी एक लम्बी कहानीमे उसके रचयिता आचार्य हरिभद्रका जीवन लक्ष्यरूप मध्यस्थभाव पन्ने-पन्नेपर उतर गया है। लेखक और उसका लिखनेका विषय उन दोनो में परस्पर बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव हो तो उस कहानीका प्रभाव और उसके लेखक का तेज अजब प्रकारका होता है, अन्यथा कहानियां लेखक का मात्र एक प्रकारका प्रमोद-साधन है याने सौख्यकी चीज है उसका प्रयोजन केवल लेखकके चितरजनके सिवाय अन्य कुछ नहीं।

लेखकके पास जो सस्कारकी और विचार शक्तिकी पूजी है वह विशेष सराहनीय है। ऐसी पूजी वर्तमानमें धनवानोके लडकामें बहुत कम देखनेमें आती है।

मे समझता हू कि लेखकके पितामहमें प्राचीन परम्पराके धर्म-सस्कार दृढमूल है, इसी कारण लेखककी प्रवृत्ति इन धार्मिक कहानियो को लिखनेकी हुई है। लेखकने कहानीका स्वभाव पुराना रखा है परन्तु उनकी वेश-भूषा एकदम नई बनाई है। अत कहानियां विशेष चमकदार बनी है।

रहस्य प्रकाश

"अभिग्रहकी" कहानीमे भगवान् महावीरके अभिग्रहकी बात है। ऐसे अभिग्रह मानसिक दृढताके निशानरूप है। जिनको अपने मनको दृढ बनाना हो वह आजकलके नये प्रकारके अभिग्रह कर सकता है। महात्मा गाधीजीने यरवडा जेलमे हरिजनोकी अलग सीटे दूर करनेके लिए इक्कीस उपवास किये थे उसके परिणाममे उस वक्तके प्रधान रामसेमेक्डोनलने— रात ही रात पार्लमेंट बुलाई और अपना विधान बदलवा दिया। अभिग्रह करनेवाला स्वय चारित्र सम्पन्न हो, सत्यशील हो नम्र हो और सामाजिक श्रेयकी प्रवृत्तिमें अपने प्राणोको भी न्योछावर कर देने तक तैयार हो। ऐसे महानुभाव अवश्य लोक-प्रिय होते है अत उनके कठोर अभिग्रहसे प्रजामे जरूर जागृति आती है, राजका अन्यायी शासन डिग जाता है और परिणाममे अभिग्रह करनेवालोका प्रभाव सब पर होता है। जिससे श्रेय ही श्रेय होता है।

जैन समाजके अग्रज साधु या गृहस्थ जो ऐसे अद्भुत पवित्र चरित्र-सम्पन्न हो, सत्यनिष्ठ हो, नम्रतम हो, वे समाजके हितके लिए अपने प्राणोतककी बलि चढ़ानेको निस्पृह भावसे तत्पर होकर किसी प्रकारका दृढ सकल्पके साथ प्रयास करे तो समाजमें शान्तिकी और

न्यायनीतिकी प्रतिष्ठा अवश्य हो सकती है अन्यथा, काले बाजारवालोके साथ जहातक उनका सहकार है, वहातक धर्माचरण सभव ही नही। खाली वेश पहिरनेसे वा थोडा बहुत कर्मकाण्ड करनेसे जीवन विकास वा समाजका श्रेय करना नितात असम्भव। हमारे समाजमे साधु वा गृहस्थ कई तपस्या करते है परन्तु उसका परिणाम प्राय - निज पर भी सिवाय देहशोषण और प्रतिष्ठा लाभके अन्य होता नही दिखता तो समाज पर तो क्या होवे ?

सामाजिक श्रेयकी चाह जो रखते हो उनका भगवान् महावीरके अभिग्रहका अनुसरण सत्य निष्टाके साथ करना चाहिए। यह भाव अभिग्रहकी कहानीका है।

'कलाका रूप' कहानीम "साक्षराइ विपरीताइ राक्षसाइ भवन्ति" इस न्यायसे विपरीत बने हुए कलाकारने देशका भारी अनर्थ कर डाला। राजा चण्डप्रद्योत और राजा शतानीकके बीच बडा विग्रह खडा करवा कर कौशाम्बीके राज्यका सर्वनाश कर डाला। राजा लोग भी कैसे लम्पट होते है उसका चित्रण भी कथामे ठीक हुआ है।

रानी मृगावतीकी जाघ परके तिलको दिव्य करामात न मानने हो तो ऐसा कह सकते हे कि रानीने जो घाघरा पहिरा था और जो उसके ऊपर साडी पहिरी थी वे दोनो पारदर्शक काचकी तरह इतने पतले थे जिससे चित्रकारकी दष्टिमे तिल आना सुसभव है।

शतानीकने चित्रकारको जो दण्ड दिया वह उसकी अविमृश्यकारिता ही है। कलाका दुरुपयोग न करना और कलाकारका अनादर न करना यही रहस्य कथाका प्राणरूप है।

भगवान्‌की वाणीमें गजसुकुमालकी आत्म-निष्ठा, दृढ़-प्रतिज्ञा और समभाव, आममें रसके सदृश अणु-अणु भरे हुए है ।

क्षत्रियको ब्राह्मण अपनी कन्या बड़ी खुशीसे देता था, यह बात भी कथासे प्रतीत होती है । अब ऐसा कम दिखता, क्या कलिकाल है ?

"परित्यक्ताकी" कहानीमे नलका धैर्य सराहा जाय वा दमयन्तीका, यह एक प्रश्न है । हमारी नजरमें दोनो बडे धीर और सच्चे प्रेमी थे, आदर्श रूप थे । यह कथा महाभारतसे भी पुरानी मालूम होती है । जब पाडवोको दु.ख पडता है तब पुराने राजा महाराजा भी विधिवश किस प्रकार सकट झेलते थे और अपना जीवन बडे सयम व सहन-शक्तिके साथ बीताते थे, ऐसा कहनेके लिए महाभारतकार नलके चरित्रको कहता है ।

"अतिमुक्तक" अनगारने बालक होनेसे अपनी तूबं.को पानी भरे नालेमे छोड कर खेलवाड करना शुरू कर दिया । इसका तात्पर्य और कुछ भी हो परन्तु बालककी अवहेलना करनेवाले स्थविरोको भगवान्‌ने जो उपालभ दिये है, उनको आजकल बालकोको या चेलोको अपमानित करनेवाले और मारनेवाले हमारे गृहस्थ और साधु समझ जाय तो भगवान्‌के उपालभ सफल बन सके । बाकी लेखकने लिखा है कि "ज्ञानकी उपलब्धि किसी एक ही प्रकाश किरणसे सभव हो सकती है।"

"तपस्या कसौटी" परकी कहानी चित्रशास्त्रको स्पष्ट रूपसे समझा देती है । यद्यपि इस कहानीके नायक जैसे नायक अतिविरले जनमते है और ऐसे विरले नायक अपने चित्तमें कही बचे-खुचे भोगके सस्कार इसी प्रकार अपने आत्मबलसे दूर कर देते है । इसका अनुकरण सर्वथा

मसवस्य है यह भी कहानीकारने दूसरे नायकमें बता दिया है ।

"प्रतिबोध" कीकहानी आजकल धनके लिए, स्त्रीके लिए वा जमीनके लिए लडनेवाले दो सगे भाइयोको अनुकरण रूप है और अभिमानके साथका सदाचार शून्यवत् निकम्मा है तथा नम्रताके साथका सदाचार अकोंपर लगी हुई शून्यकी समान महामूल्यवान है यह भी बात कहानी बताती है ।

"मिलन" की कहानीमें पुरुषकी अविचारिता तथा सरलता मालूम होती है और स्त्रीकी सहनशीलता व सतीत्व चमक उठता है । स्त्री और पुरुषके सम्बन्धमे आज भी जो अनबन हो जाती है उसका कारण ही होता है । जब पुरुष व स्त्री होशमे आते हे तब मामला तय होकर सुधर जाता है ।

"अमृतवर्षा" कहानीमे भगवान् महावीरकी दृष्टिमे कितना अमृत भरा है और कितनी मानव वत्सलता तथा धीरता भरी है यह अच्छे से अच्छे शब्दोमे चित्रितकी है । ऐसे महावीरोके लिए प्रचण्ड क्रोध पर जय पाना एक दम आसान है जो हमारे लिए बडा कठोर मालूम होता है ।

'पश्चात्ताप 'की कथामें पहाडकी गुफामे रहनेवालोको भी काम किस प्रकार सताता है और ऐसे लपटोको थप्पडकी तरह सचोट असर करने वाली देवियां भी मिल जाती है । जब थप्पड लगती तब भी कोई विरले ही समझते हैं परन्तु इस कथाके रचनेमि ऐसे ही विरले निकले और उन्होंने अपना सयम सफल किया ।

"मुक्तिके पथपर" वाली कहानी बताती है कि मानवके मनमे

उज्ज्वलोज्ज्वल सामग्री भरी पड़ी है, कोई उसको चेतानेवाला चाहिए।

देखिये मोतीलालजी नेहरूजीका वैभव विलास या देशबन्धुदासकी संपत्ति परायणता, उनको महात्माजीकी जरा सी दियासलाई लगीके तुरन्त वे चेत गये और शुद्ध कांचनके रूपमें सिद्ध हुए। आज भी यह बात शक्य है।

"अनुगमनमें" इलायची कुमारका जो अनुगमन उस नटीकी ओर हुआ, वह तो अनुकरणीय नहीं परन्तु लोगोंके त्यागकी ओर जो उसका अनुगमन हुआ है वह अनुकरणीय है। और कहानीमें यह चित्र कहानी-कारने हू-ब-हू अपने शब्दोंमें अंकित किया है।

बाहुबलीवाली कहानी और प्रतिबोधवाली कहानीके नायक एक-से हैं। परन्तु प्रस्तुत कहानीमें लेखकने बाहुबलीको बाहुबलीके ढंगसे चित्रित करके अपना कलाकार-सा उत्तम कौशल दिखाया है।

"मुक्तिके पथपर" और "प्रकाश किरण" में चेतावनीकी महिमा अच्छी तरहसे बताई गई है। पहलीमें राजाकी ओरसे चेतावनी मिली है और दूसरीमें अपनी स्त्रीकी ओरसे चेतावनी मिली है। आजकल तो ऐसी हजार-हजार चेतावनी मिलनेपर भी हम कुछ भी समझ नहीं सकते परन्तु पत्थरसे जड़ ही बने रहते हैं।

"न्यायमें" प्रकृतिका सच्चा न्याय बताया गया है परन्तु आजकल हम लोग धैर्य खो बैठे हैं तथा प्रकृतिके न्यायपर हमारा विश्वास जाता रहा है। इसी कारण हम दु:खी-दु:खी हो रहे हैं। यदि सेठ सुदर्शन-सी धीरता हममें हो तो आज ही सारा समाज पलट जाय।

"चण्डाल श्रमण" लिखकर कहानीकारने अपने चित्तके क्रान्तिमय

विचार बता दिये हैं। जैन शासनमें सब मनुष्य समान हैं गुणोंका ही मूल्य है, जातिका कोई मूल्य नहीं, यह बात भगवान महावीरने अपने श्रीमुखसे बताई है। अपने समवसरणमें गदहे और कुत्ते तक आते थे ऐसा बताकर भी बताई है, तो भी आजका जड समाज यह बात न समझ कर और मनुष्य-मनुष्यमें जातिगत उच्चता व नीचताको मान कर भगवान महावीरका घोर अपमान कर रहा है।

हमारे जैन मुनि आचार्य व स्थाविरोंको भी यह बात नहीं सूझती तो विचारे अज्ञानी समाजकी क्या बात ?

परन्तु लेखकके समान क्रान्तिमय विचारवाले युवक समाजमें पक रहे हैं जिससे आशा पडती है कि अब ज्यादा समय तक भगवानकी वाणीकी अवहेलना न हो सकेगी।

'धर्मकी रेखा 'की कहानीमें राजा गर्दभिल्लने साध्वी सरस्वतीका अपहरण किया था और उसे उसके भाई आचार्य कालकने केवल अपने बलसे ही मुक्त कर फिर साध्वी संघमें प्रवेश कराया था। इस वृत्तांत को लेकर धर्मकी रेखा खींची गई है।

कालकका समय यद्यपि सुनिश्चित नहीं जान पडता तो भी महावीर निर्वाणकी तीसरी चौथी शताब्दीमें उसकी विद्यमानता माननेमें प्राय बाधा नहीं लगती। सरस्वतीका अपहरण बताता है कि राजा ठीक गम ही मन गये थे अन्यथा सन्यासिनीका अपहरण कैसे हो सके ? राजा तो गये बन जाये इसमें कोई अचरजकी बात नहीं परन्तु प्रजाकी जनता और जिस पर जैनसंघकी व्यवस्थाका सारा भार है वह श्रमण-संघ भी उस समय जरूर धर्म पराङ्मुख हो गया था।

यदि श्रमणसघकी चारित्रजन्य तेजस्विता होती, आत्म प्रभाव होता तो राजाकी भी क्या मजाल कि जैन साध्वीका अपहरण कर सके ।

जैसे आज हम धर्मको रटते रहते है, क्रिया काड करते रहते है, कर्म-ग्रथको घोख-घोख कर कर्मकी प्रकृतियां गिनते रहते हैं, जीव विचारादिको रट रटके जीवके भेद प्रभेद तथा नव तत्वोको भी कठाग्र करते रहते है, जीव दयाको समझ कर हम हरी तरकारी वा पत्तेवाली भाजी तथा कद नही खाते परन्तु तरकारीको सूखाकर खानेमे हमारी जीव दयाको कोई जोखिम नही । झूठ बोलनेमे चौर्य, अनाचार कोई न जान जाय इस प्रकार करनेमे धर्मकी बाधा नही होती । कालेबाजार, अनीति-अन्याय-अप्रामाणिकता करनेपर भी हमारी जीवदयाको कोई तकलीफ नही । अन्याय सहना वा काच करके धन्धा चलाना उसमे भी हमारी श्री जिन पूजा, सामायिक व प्रतिक्रमणादिकको कोई तकलीफ नही ।

मै समझता हू और सम्भावना करता हू कि आचार्य कालकके समय भी जैन सघकी स्थिति ऐसी ही रही होगी । उस समयके जैन आचार्य व गृहस्थ आदि कहते होगे कि पचमकाल भीषणरूपसे भस्म ग्रहके प्रभावको दिखा रहा है, क्या किया जाय ? आखिर तो जिनके जैसे कर्म । और राजाके विरुद्ध भी तो कैसे कारवाई की जाय ? मात्र एक साध्वीके लिए ही सारे सघको जोखिममें डालना भी तो ठीक नहीं । फिर हम तो अहिंसाके सच्चे उपासक है अत: झगड़ा लड़ाई करनेसे हमारा धर्म कैसे टिकेगा ?

यह सब वातावरण देखकर शूरवीर आचार्य कालकका खून उबल पड़ा होगा और उनके पक्षमे किसी अन्य जैन आचार्य व सेठ साहूकार की तथा अन्य प्रजाजनकी भी सहानुभूति नहीं रही होगी तब वे अकेले ही यवनोंकी सहायताके लिए चल पड़े और गर्दभिल्लको ठिकाने लाकर— अपनी बहिनको मुक्त कराई। वार्ता धर्मकी वास्तविक रेखाको दिखलाती है और हमारे सघकी कर्तव्यहीनताको खड़े शब्दोमें प्रकट करती है।

"दण्डमे" मुनिकी वासना जागृति और माताकी वत्सलतासे मुनिका उद्धार स्पष्ट शब्दोमें अकित किया है। आजकल तो दूषित मुनि स्वय नही जान सकता, और ऐसी माताएँ भी नही जो उनको जगाती। इसी कारण हमारी मुनि सस्था निस्तेज दिख पड़ती है।

उद्बोधनमे अध्यापक और छात्रोकी वास्तविक दशाका चित्रण किया है। पहिले सुनते है कि धान, अनाज वगैरह सस्ता था, घी-दूध सुलभ थे, तब भी अध्यापकोको पेट भर खाना भी दुर्लभ और छात्रोको तो वह अति दुर्लभ था। आजकल भी सच्चे अध्यापकोकी यही दशा है और सच्चे छात्रोका भी यही हाल है। यह परिस्थिति कब सुधरे यह तो भगवान जाने।

'सत्यव्रती' मे राजा हरिश्चद्र और उसकी रानी तारामतीके पुत्र रोहितकी मरण कहानीके साथ उनसे (तारामतीसे) श्मशानका कर लेनेकी बात है। राजा हरिश्चद्र सत्यसे डिगते नही और आकाशसे फूल वर्षा होती है। मै तो कहता हू कि आकाशसे फूल वर्षा हो या न हो तो भी मानवको अपनी मानवताको बचानेके लिए सत्यव्रती होना ही चाहिये।

हरिश्चन्द्रकी कथाका एक भय स्थान मुझे दिख पड़ता है वह यह है कि हरिश्चन्द्रके जैसे सत्यव्रतीको बड़े भारी कष्ट झेलने पड़ेंगे और बडी भारी आफतका सामना करते हुए असाधारण सहनशीलता बतानी पड़ेगी यह देखकर आजकलके लोग सत्य व्रतसे डर न जायँ।

जैसे हम श्वासोच्छ्वास बिना नही जी सकते उसी प्रकार हम सत्य के बिना भी नहीं जी सकते, यही मानवका मानवधर्म है। हा, यह बात सच है कि कोई प्रसग ऐसा आ पड़े जहा हमारी मानवताकी कसौटी होने लगे वहा हम जी-जानसे भी मानवताको ही थामे रहेंगे फिर भले आकाशसे फूल वर्षा हो या न हो।

अन्तिम कहानी 'अनावरण" की है। उसमे नारी जातिका उत्कर्ष बताया गया है। स्त्री विवेकी होनेपर कैसा अद्भुत कार्य कर सकती है। जो मत-सम्प्रदाय स्त्री जातिको विकासके साधन नही देते, वे उनके प्रति न्यायसे नही वर्तते।

जैन शासनमे स्त्री और पुरुष दोनोको सम्पूर्ण स्वातन्त्र्य दिया गया है। पीछेसे लोगोने यह भले ही कहा हो कि स्त्री अमुक नही पढ सकती, अमुक नही कर सकती, परन्तु यह विचार जैन दृष्टिसे संकुचित है। जहा स्त्री तीर्थंकर होती है, जहां स्त्री केवली होती है वहा ऐसा कौन कह सकता है कि स्त्रीको अमुकका अधिकार नही।

यदि पुरुषमें दोष हो तो उनको भी अधिकार नहीं। इसी प्रकार दूषित नारीको अधिकार न हो यह ठीक है। केवल नारी जाति, होनेसे उनको सदधिकार वंचित नहीं रक्खा जा सकता।

तीर्थंकर होना भी एक अच्छेरा बताया है। परन्तु मैं यह कहने

को तैयार हू कि उसमें अच्छेरा-बच्छेरा कहनेकी कोई जरूरत नही। जैसे पुरुषको सत्पथके सब अधिकार है वैसे ही स्त्रीका भी सत्पथके सब अधिकार है।

इक्कीस कहानीका यह गुच्छा लेखक मालीने अच्छी तरह सजाया है। उसकी सुगन्धी पाकर जनता प्रसन्न हो, यही आकांक्षा है।

छापनेमें अधिक गल्तिया रह गई है, कही-कही मुख्य नाम भी ठीक नहीं छपे है। कही तेरहकी जगह बारह छप गया है, कही बराबर छाप उठी भी नही है इस प्रकार यह कहानी सग्रह मुद्रा-राक्षसके पज से बचा नही है।

लेखकको मेरी मलामण है कि वे अपना खुदका और आसपासकी परि स्थितिका ठीक निरीक्षण करे तथा समाज, राजकारण—शिक्षाप्रणाली, रूढि-परम्परा, धर्मान्धता, गुरुतम राजशाही, सेठशाही, कौटुम्बिक सकुचितता इत्यादिका खुली नजर अन्वीक्षण करे फिर उनको बराबर पचाकर अपनी कलमसे कागजपर उतारे तो स्वय लेखकको और जनता को कुछ-न-कुछ लाभ होगा ही, लाभ नही तो आनन्द तो होगा ही।

भाई केशरीचन्दजीके पत्रसे मै विशेष प्रसन्न हू। पत्रमें सरलता, नम्रता और सच्चाई अक्षर-अक्षरमे भरी पडी है इसी कारण ही प्रस्तुत लेख लिख सका हू।

सेठियाजीका भी मै इस प्रेरणाके लिए ऋणी हू। सेठियाजीको मेरी मलामण है कि आपके पौत्ररत्नकी शक्ति जिस प्रकार पनपे, इस प्रकार आप वातावरण बनावे ताकि उसकी विवेक शक्ति, निरीक्षण शक्ति तथा उससे होनेवाली लेखन शक्ति बढ सके।

अन्तमें एक बात कहकर पूरा करूँगा कि लेखककी कल्पनामें सचाईसे जीना शक्य नही। इस बातको लेखक अपने धनार्जनके व अन्य प्रवृत्तिके सच्चे प्रकारके प्रयत्नसे गलत साबित कर और इसके लिए उनको तटस्थताका त्याग करना पड़े तो उसे भी वे त्याग देवे।

शिव मस्तु सर्व जगतः

अहमदाबाद
भाद्र शुक्ला ५ स० २००६

—बेचरदास दोषी

मुक्ति के पथ पर

अभिग्रह

जगत के उद्धारक भगवान् महावीर को घूमते हुए महीनों बीत गये पर उनकी प्रतिज्ञा पूरी न हुई। जहां जहां जाते हैं नई नई तरह तरह की समस्याएँ सामने आती हैं। प्रभु देखते हैं मुसकराते हैं और चल देते हैं। भगवान् तो और ही कुछ चाहते हैं। उन्होंने तो कुछ और ही ठानी है। राजकन्या हो, सदाचारिणी हो, और हो निरपराधिनी पर फिर भी जिसके सुकुमार पदों में पायल की जगह बेड़ियां तथा सुन्दर हाथों में चूड़ियों के स्थान में हथकड़ियां पड़ी हुई हों। सुन्दर सुनहले रेशम से कोमल बालों के स्थान पर जिसका सिर मुंडा हुआ हो, शरीर पर काच्छ लगी हुई हो, तीन दिन का उपवास किए हो, उपवास भंग करने के लिए उड़द के बाकले सूप में लिए हो। न घर के अन्दर हो, न बाहर हो। एक पैर देहली के भीतर हो तथा दूसरा बाहर हो। दान देने के लिए भगवान् जैसे महान् अतिथि की प्रतीक्षा कर रही हो। प्रसन्न मुख पर नयनों में आंसू हों। करुणा और हास्य का अपूर्व सामंजस्य चाहते थे वीर प्रभु। एक अनहोनी और विचित्र सी बात!

"हैं, यह क्या! भगवान् लौट गये? नहीं नहीं, यह नहीं हो सकता। कदापि नहीं। दीनबंधु क्या इस टूटे-फूटे अकिंचन

झोंपड़े को देखकर तुमने मुंह मोड़ लिया ? नाथ, कृपासिन्धु, ऐसा न करो । ऐसे निष्ठुर इतने निर्मम न बनो । जो कुछ भी है मुझ हतभागिनी का आतिथ्य स्वीकार करो कहते कहते हठात अबला की बड़ी बड़ी आंखों से मोती जैसे दो बूंद आंसू टपक पड़े । उसके प्रसन्न मुख पर निराशा की एक गहरी रेखा खिंच गई । बेचारी राजकन्या चन्दनबाला ! क्या क्या न देखा था अपने छोटे से जीवन में उसने ।

प्रभु और अधिक आगे न बढ़ सके । बढ़ते कैसे ? करुणा-सागर के लिए दो बूंद आंसू कम न थे । उनका कोमल हृदय दया से द्रवित हो उठा । अबला के समक्ष भिक्षा के लिए अपने दोनों हाथ फैला दिये उन्होंने । कितना सुन्दर, सुखद और अद्भुत था वह दृश्य । समस्त वसुन्धरा जगमगा उठी । चारों ओर आनन्द का सुखद वातावरण छा गया । भगवान् का अपूर्व अभिग्रह आज पूर्ण हो गया, यही चर्चा आज कौशाम्बी के घर घर में हो रही थी । इसका सारा श्रेय सती चन्दनबाला को था । वही निरपराधिनी वंदिनी, राजकुमारी किन्तु दुखिया अबला चदनबाला जिसके समक्ष त्रिलोकीनाथ ने स्वयं अपने दोनों हाथ फैलाए थे ।

× × × ×

सुनना चाहते हो उस अबला का क्या हुआ ?

सुनो,–अबला नाच उठी । तुमने देखा होगा, नर्त्तकियां नृत्य करती हैं, घुंघुरू बांध बांधकर, पर उसे उनकी आवश्यकता न थी । उसे किसी साज सज्जा की जरूरत न थी । वह नाची और

इतनी तल्लीनता से नाची कि वह उन्मादिनी अपनी सारी सुध-बुध खो बैठी। इस आत्मविस्मृति में भी आनन्द था, आत्मतृप्ति थी। उसका रोम रोम पुलकित हो उठा। वहां का सारा वातावरण उस आत्मविभोर नृत्य से गूँज उठा। ऐसा नृत्य ऐसी तल्लीन पदध्वनि, ऐसा मादक चरणक्षेप बहुत दिनों से दुनियां ने देखा न था!

× × × ×

कहते हैं, अबला ने पुरस्कार चाहा अपने वीर प्रभु से।

प्रभु ने उत्तर में कहा बताते हैं—परम धर्म अहिंसा का प्रचार करो। यही तुम्हारा पुरस्कार है देवि।

जरा सोचो तो, कैसा उपयुक्त पुरस्कार था वह। उस वीर की पहली शिष्या ने साध्वी-संघ की अधिष्ठात्री बन कर उस अमर संदेश को घर घर पहुँचाया भी, जिसकी सुमधुर लोकहितकारणी ध्वनि आज भी भारत के कोने कोने से गुंजरित हो रही है। समय का प्रत्येक क्षण आज भी उस महान संदेश से आलोकित हो रहा है, और होता रहेगा, जब तक मानव मानवता के मूल मंत्र अहिंसा का पुजारी रहेगा।

★

दो

कला का रूप

आखिर चित्रकार ही तो ठहरा। कौशाम्बी की सर्वांग सुन्दरी महारानी मृगावती के प्रतिबिंब की एक झलक भर देख पायी कि चित्र बनाकर तैयार कर दिया। अचानक चित्र की जांघ पर एक बूंद मसि ने गिर कर कलाकार के कार्य को और ही रूप दे दिया। उसे छुड़ाना या पोंछना चित्र के सौंदर्य को अछूता न रहने देना अतः चित्रकार ने मन ही मन कहा—चलो रहने भी दो। सुन्दरी की जांघ पर एक तिल भी तो होना चाहिए। कलाकार ने उस मसिबिन्दु का स्वागत किया। अपने चित्र में उसे जहां का तहां रहने दिया।

कौशाम्बी नरेश ने चित्रकार की कला का निरीक्षण किया, बोले "चित्र तो सुन्दर है" और अचानक उनकी दृष्टि पड़ गई उस जांघ पर के तिल पर। महाराज ने सोचा, विचारा। संशय और संदेह ने उनके विचारों को को घेर लिया। अनेक यत्न करने पर भी वे उनसे मुक्ति न पा सके। महारानी और चित्रकार दोनों ही उनके हृदय में घुल रहे विष के प्रभाव से बच न सके।

उन्होंने आरक्त नेत्रों से चित्रकार की ओर देखा। उनके हृदय के भाव को जैसे वह समझ गया हो, इस तरह उसने निर्विकार

भाव से उत्तर दिया—एक कलाकार का उत्तर इसके सिवा और क्या हो सकता है कि उसकी कृति में जो कुछ आगया है वह अपने स्थान पर सर्वथा उपयुक्त है।

उपयुक्त है! महाराज शतानीक ने क्रुद्ध होकर कहा।

क्या बताऊँ महाराज। महारानीजी से इसका निर्णय करा सकते हैं। मुझे तो अपनी कला पर पूर्ण भरोसा है। मेरे देवता ने आज तक कभी मुझे निराश नहीं किया। इसीलिए, केवल इसीलिए, मैंने इसे रहने दिया है—दृढ़ता के स्वर में चित्रकार ने कहा।

इससे महाराज को संतोष न हुआ। कहा-तुम्हारी परीक्षा होगी। अभी इसी समय।

चित्रकार—मैं तैयार हूं। उसके स्वर में दृढ़ संतोष था।

एक कुब्जा का मुँह मात्र दिखा दिया गया चित्रकार को परीक्षार्थ।

तत्क्षण चित्रकार ने तूली हाथ में ली, अंगुलियां घूमीं और लोगों ने साश्चर्य देखा कि चित्र तैयार था। दर्शकों की आंखें पथरा गईं। एक निर्दोष और यथावत चित्र प्रस्तुत था।

अविश्वास हट गया, पर इससे रानी के अपमान की बात तो नहीं भूली जा सकती और इसी अपमान के लिए उसे दंड स्वरूप अपने दायें हाथ का अंगूठा उत्सर्ग करना पड़ा।

चित्रकार की भावना विद्रोही हो उठी। उसने बदला लेने का दृढ़ निश्चय कर लिया और बायें हाथ से चित्रकला का अभ्यास

शुरू किया । उसकी अनवरत साधना सफल हुई । उसने रानी मृगावती का एक दूसरा चित्र बनाया उससे भी अधिक सुन्दर, कलापूर्ण और महाराज शतानीक के प्रतिद्वन्द्वी महाराज चंडप्रद्योतन को लेजाकर भेंट किया ।

"यह चित्र काल्पनिक है या वास्तविक ?—" उत्सुक राजा ने अत्यन्त उत्साह के साथ पूछा ।

मुसकराते हुए चित्रकार ने कहा—काल्पनिक नहीं है महाराज । यह है सर्व सुन्दरी कौशाम्बी की पटरानी मृगावती का चित्र । केवल चित्र । वह भी बाएं हाथ से बनाया हुआ । अब आप निर्णय कर सकते हैं कि वास्तविक और काल्पनिक में कितना अन्तर होता है ।

फिर क्या था, दूत भेजा गया । अपने दुश्मन कौशाम्बी के राजा शतानीक के पास सुन्दरी मृगावती की मंगनी के लिए ।

दूत को उत्तर मिला—अपने मूर्ख राजा से कह देना, हमेशा कन्या की मगनी होती है विवाहिता स्त्री की नहीं, और उससे यह भी कहना न भूलना कि वह किसी आश्रम में जाकर राजनीति और उससे पहले धर्मनीति का अध्ययन करे । समझे—जाओ ।

फलतः चण्डप्रद्योतन ने अपनी विशाल सेना के साथ कौशाम्बी पर चढ़ाई करदी । घमासान युद्ध हुआ । चण्डप्रद्योतन की विशाल सेना के समक्ष शतानीक न ठहर सका । वह युद्ध में काम आया । विजयश्री से चण्डप्रद्योतन उत्फुल्ल हो उठा ।

अब उसकी खुशी का ठिकाना न था। रानी मृगावती से शीघ्र ही उसका मिलन होगा इस बात का ध्यान आते ही उसका रोम रोम आनन्द से नाच उठा। उसने गर्व और सज-धज के साथ नगर में प्रवेश किया। वह तो इसी ध्यान में विभोर था कि महल में प्रवेश करते ही सुन्दरी मृगावती का दर्शन होगा। जिसके मनमोहक चित्र ने उसे मोहित कर रखा है, बावला बना रखा है उसी मृगावती से अब मिलने में कोई देर नहीं होगी। आज उसका चिर दिनों का स्वप्न सच्चा होगा। परन्तु शोक उसकी सारी आशाएं अतृप्त की अतृप्त ही रह गईं। सुन्दरी मृगावती अब वहाँ कहाँ थी? वह तो श्रमण भगवान् महावीर के धर्म राज्य में कुछ ही घड़ी पूर्व प्रविष्ट हो चुकी थी, इस संसार के भोग विलास से कहीं ऊपर। श्वेत वस्त्रों से आवृत एक तेजस्वी साध्वी के सामने चण्डप्रद्योतन ने अपने को खड़ा पाया, जिसने हाथ उठाकर उसे धर्माचरण का उपदेश दिया। राजा चण्डप्रद्योतन का वासनादीप्त मुख लज्जा से अवनत हो गया। उसके सामने उसकी विजय भी पराजय के रूप में खड़ी होकर अट्टहास करने लगी। उसका गर्वित उन्मत्त मुख सहसा नीचे की ओर झुक गया।

★

तीन

भगवान की वाणी

सारी द्वारका उलट पड़ी थी। स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध सरदार-उमराव सेठ-साहूकार-नौकर-चाकर सब नगर के बाहर जा रहे थे, भगवान् नेमीनाथ के दर्शन करने द्वारकानाथ श्रीकृष्ण भी उन्हीं में जा रहे थे एक मदोन्मत्त हाथी पर सवार होकर अपने लघु-भ्राता कुमार गजसुकुमार के साथ। अभी कुमार का हाथी शहर की प्राचीर के बाहर होने भी न पाया था कि उन्होंने एक किशोरी को देखा। कितनी सुन्दर, सुकुमार और चंचल थी वह कुमारी! यह बात कुमार के रोमांचित शरीर से व्यक्त थी। भगवान् के दर्शन की प्यासी आंखें यहीं तृप्त हो गयीं। कृष्ण ने देखा और मुसकरा दिए। अभिप्राय समझते देर न लगी। तत्काल ही उन्होंने मुसकराते हुए महावत से पूछा—यह सुन्दर बालिका किसकी सुपुत्री है?

महावत से उत्तर मिला—सोमिल ब्राह्मण की।

और तत्काल मंगनी भेज दी गई।

आज के पाठक को सन्देह हो सकता है कि ब्राह्मण की पुत्री से क्षत्रिय कुमार की मंगनी! परन्तु इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। उस समय के समाज पर इस कदर जाति प्रथा का बोझ न था। शादी-विवाह के मामले में जाति भेद बहुत अधिक बाधक

नहीं था। योग्य पात्र का ख्याल ही प्रमुख था। सोमिल ब्राह्मण को जब यह समाचार दूतों से मिला तो उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। पुत्री के ऋण से मुक्त कराने के लिए द्वारका पति के यहां से मंगनी आई थी। ब्राह्मण ने नन्दनवन में सांस ली। उसकी खुशी का क्या कहना! हर्ष को रोकने की विफल चेष्टा करते हुए उसने स्वीकृति दे दी।

भगवान नेमीनाथ के समवसरण से लौटने पर गजसुकुमार के विचार, एक संघर्ष के पश्चात्, बिल्कुल परिवर्तित हो चुके थे। भगवान् की अमृतमय अलौकिक वाणी का कुछ ऐसा अद्भुत प्रभाव पड़ा कि कुमार की भावना निवृत्ति की ओर खिंचती गई। उनका हृदय संसार की विरूपताओं को देखने में समर्थ हो सका, भगवान के उपदेश से उनका मन कुमारी से खिंच चुका था। अब उन्हें स्त्रीत्व को पहचानने में सफलता मिली। हर एक में मातृत्व की झलक दिखने लगी। विकारजन्य भावनाएं अतीत के गहरे कूप में विलीन हो गईं। अपना समस्त सुख सम्पूर्ण वैभव उन साधुओं के सामने तुच्छ आडम्बर मात्र जचने लगा जिसे क्षण भर पहले सुख माने हुए थे उसे ही दुःख का कारण समझने लगे। क्षणभर पहले का सुखमय संसार अब असार और पापपूर्ण जंचने लगा। अब उन्हें जीवन का सर्वस्व त्याग और साधना के मार्ग में ही दिखने लगा। भगवान की महान् त्यागवृत्ति और उनकी अलौकिक शान्ति ने उन्हें मोह लिया। उन्होंने भी कुमार के सुन्दर विचारों का अनुमोदन करते हुए कहा था—कुमार तुम्हारा विचार सराहनीय है।

यथाशीघ्र बड़ों की आज्ञा प्राप्त कर जीवन की अमरता को वरण करो। माया मोह के बन्धनों का परित्याग कर महान् साधुत्व को प्राप्त करो। यही एक मात्र सर्वोच्च मुक्ति का मार्ग है। इसी में कल्याण है।

× × × ×

कृष्ण ने कहा—माताजी, आज गजसुकुमार के लिये सोमिल ब्राह्मण के घर मंगनी भेजी थी और उन्होंने स्वीकार भी करली।

माता देवकी ने अत्यन्त प्रसन्न होते हुए कहा—सच ! कन्या तो तुम्हारी देखी हुई है ?

कृष्ण ने उत्तर दिया—हां गजसुकुमार ने ही पसन्द······

इतने में कुमार भी आगये और बोले—हाँ, माताजी आज तो मुझे बहुत ही पसन्द आई। ऐसी तो पहले कभी मैंने······

विनोदी कृष्ण ने व्यंग भरे स्वर में बीच ही में पूछा-क्या भाई ?

निष्कपट भाव से कुमार ने उत्तर दिया—हां भैया, आज जैसी भगवान की अलौकिक वाणी मैंने पहले कभी नहीं सुनी। क्यों माताजी आपने भी श्रवण की थी ?

उत्तर सुनकर कृष्ण और देवकी चकराये। उनके कान में यह वाक्य तीर की तरह चुभा।

उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही कुमार ने कहा—माताजी, मैं आपकी अनुमति लेने आया था और भैया आपसे भी।

देवकी ने पूछा—किस काम के लिए ?

कुमार ने कुछ झेंपते हुए कहा—पहले आप वचन दीजिये कि मैं 'ना न' कहूंगी।

" किस बात की अनुमति बेटा ? "

कुमार बोले—इतना आप निश्चय मानिये की किसी अच्छे कार्य की ही अनुमति। देवकी ने बीच ही में कहा—फिर साफ साफ क्यों नहीं कहते बेटा ?

कुमार ने उत्तर दिया-भगवान का शिष्यत्व स्वीकार करने की। देवकी ने कहा—किन्तु उनके तो हम सभी शिष्य हैं।

कुमार ने हँसते हुए कहा—हां, यों तो हम सभी उनके शिष्य हैं और मैं भी हूं, किन्तु अब मैं उनका ऐसा शिष्य होना चाहता हूँ जो उनके चरणचिह्नों का अनुगमन कर सकूं। माँ, इसे आप मेरे सौभाग्य का कारण मान कर मुझे गृहत्याग की आज्ञा प्रदान कीजिये।

पुत्र तुम यह क्या कह रहे हो ? तुमने यह भी सोचा कि तुम साधना के कठोर पथ के योग्य भी हो ! तुम उस कठिन व्रत को निभा भी सकोगे ? साधुजीवन के कष्टों की तरफ भी तुमने ख्याल किया है ? वह पग पग पर प्रतिबंधों से घिरा हुआ है। सुख दुख समान माने जाते हैं। मरुभूमि की तपती रेती पर तुम अपने सुकुमार पैरों से कैसे विचरण कर सकोगे ? तुम अपने मन को इन सब राजसी विलासों से कैसे विमुख रख सकोगे ? क्या तुम्हारी यह कच्ची उम्र इस योग्य है ? अभी तो

इन नन्हें नन्हें ओठों का दूध भी नहीं सूखा। यह बाल हठ उचित नहीं है कुमार।

कुमार ने अत्यन्त नम्रता के साथ कहा–अवश्य कर सकूंगा। आपका आशीर्वाद चाहिये। एक क्षत्रिय कुमार स्वार्थ या परामर्श किसी के भी हेतु शत्रु पर तलवार चला सकता है, तो फिर वही कार्मरूपी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिए क्या इन कष्टों से विचलित होगा ? क्या वह इन कष्टों को महत्व देकर उस पवित्र मार्ग का अनुसरण करना छोड़ देगा ? उम्र उसके ध्येय में क्या बाधक हो सकती है ? मां के सामने तो मनुष्य हर समय दुधमुहा बच्चा ही रहता है। मातृत्व इसे कभी स्वीकार नहीं करता कि वह बहुत बड़ा हो गया है।

कुमार की दृढ़ धारणाओं से देवकी और कृष्ण विचलित हो उठे। उनको पूरा विश्वास हो गया कि अब यह घर पर रहने वाला नहीं। फिर भी अनेक प्रकार की निष्फल चेष्टाएं की गईं, पर सब व्यर्थ हुआ। आखिरी प्रलोभन में कहा गया कि वह केवल एक दिन के लिये राज्य करना स्वीकार करले। उसके पश्चात् दीक्षा ग्रहण कर सकता है। केवल एक दिन के लिए उनकी मां उन्हें राजा के वेश में देखना चाहती है। अब भी उन्हें विश्वास था कि इस मोह में वह उसे फांस लेगी। अपने पुत्र को साधु होने से बचा लेगी।

देवकी ने आग्रह भरे स्वर में कहा–बेटा एक बात मानोंगे ?

कुमार ने कहा—मैंने तो कभी कोई बात नहीं टाली माताजी ?

देवकी ने कहा—यह नहीं कहती। केवल एक बार तुम्हें राज-वेश में देखना चाहती हूं।

किन्तु इससे क्या होगा माताजी। एक दिन के लिए मुझे···

किन्तु बेटा यह मेरी—कहते कहते आंखें डबडबा आईं।

विवश कुमार को यह बात स्वीकार करनी ही पड़ी। मां की इस छोटी सी बात को भला कैसे टाल देते।

क्षण भर में यह संवाद विद्युत की तरह सारी नगरी में फैल गया। पुरवासियों को अत्यधिक आश्चर्य हुआ। उन्हें एकाएक इस पर विश्वास न हुआ। उनकी समझ में कुछ भी नहीं आया कि आखिर इसका कारण क्या है? इसकी आवश्यकता क्या थी? श्रीकृष्ण के रहते हुए छोटे कुमार को राज्य देना। इस पर नाना प्रकार की अटकलें लगाई जाने लगीं। किन्तु ढिंढोरे ने उनकी सारी अटकलों का निवारण कर दिया। समस्त नगर में खुशियां मनाई जाने लगीं। बन्दियों ने कारावास से मुक्ति पाई। ब्राह्मणों और गरीबों को मुंह मांगा दान मिला। चारों ओर चहल पहल आनन्द का साम्राज्य छा गया। सबकी जबान पर अपने नये राजा का बखाण और उसकी चर्चा थी।

श्रीकृष्ण ने अपने हाथ से कुमार को मुकुट पहनाया और अभिषेक किया। ब्राह्मणों ने आशीर्वाद दिये। सभा मंडप राजा गजसुकुमार की जय घोषणा से गूंज उठा। सब सरदार उमराव

चुपचाप खड़े होकर अपने नये राजा के आदेश की प्रतीक्षा करने लगे ।

कुमार ने सिंहासन पर आरूढ होते ही सर्व प्रथम हुक्म दिया कि हमारे लिए भण्डोपकरण तैयार कराये जायं ।

आज्ञा सुनते ही सबका माथा ठनका । सबको पूर्ण विश्वास होगया कि हम नये राजा की छत्रछाया में एक दिन से अधिक नहीं रह सकेंगे । पहले हुक्म ने ही सबको हतोत्साह कर दिया ।

दूसरे दिन द्वारकावासियों ने अपने प्रिय कुमार और नये राजा को अलङ्कारों और सुन्दर चमकीले बहुमूल्य वस्त्रों से रहित श्वेत वस्त्रों से आवृत हाथ में रजोहरण लिये साधुवेश में नगर से बाहर तपस्या के लिए जाते हुए देखा । कुमार के तीनों वेश देखने वाले पुरजनों को शायद यह वेश सबसे अधिक सुन्दर अलौकिक लग रहा था । सबका हृदय कुमार के पगों के पीछे खिंचा जा रहा था । उनकी आंखों से अश्रुधारा बह चली थी । सबका हृदय भर आया था । कुमार की इस उत्कृष्ट वैराग्य भावना ने सबको वश में कर लिया ।

×   ×   ×   ×

सूर्य को अस्त होते देखकर एक आदमी जल्दी जल्दी जंगल से नगर की ओर बढ़ा चला आ रहा था कि उसने एक सघन वृक्ष के नीचे तपस्या करते हुए एक युवा ध्यानी को ध्यानस्त मौन खड़ा देखा । उसका सिर श्रद्धा से नत होना ही चाहता था

कि चौंका, हैं ! यह क्या ? वह यह क्या देख रहा है ? यह तपस्वी तो स्वयं गजकुमार हैं उसके दामाद। उसने साश्चर्य पूछा- कुमार आप यहां और इस वेश में ? कहीं मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूं ? यह छल तो नहीं है ? किसी मायावी का तो यह कृत्य नहीं ? मुझे भ्रम तो नहीं हो रहा है ? किन्तु नहीं यह नहीं हो सकता। मेरी आंखें धोखा नहीं खा सकतीं। पर कुमार आपने यह क्या स्वांग रचा है ? इस एकान्त निर्जन भयंकर वन में इस तरह अकेले खड़े रहने में आपको भय नहीं लगता ? यह क्या आपके योग्य है ? इस फकीरी को लेने के लिए क्या दुनियां कम थी ? राजमहलों को त्याग कर यहां आने की क्या सूझी ? यहां आपको कौन सा सुख मिलेगा ? किन्तु महाराज ने यहां आने की आज्ञा कैसे दी ? अगर साधु ही बनना था तो मेरी पुत्री से मंगनी क्यों की ? बोलिये जवाब क्यों नहीं देते ? आपको गृह त्याग का अधिकार ही क्या रह गया था ? कुमार अब भी मैं प्रार्थना करता हूं कि इसे छोड़ छाड़कर राज महलों में चलिये। नहीं बोलते ? अच्छा ठहरो अभी बताता हूँ फिर देखता हूं यह स्वांग कितनी देर तक रहता है। तत्काल ही उस चण्डाल-कर्मी ब्राह्मण ने पास की अर्ध दग्ध चिता में से जलते हुए अङ्गारे निकाल कर ध्यानस्थ कुमार के सिर पर मिट्टी की पाल बनाकर भर दिये। सारी पृथ्वी डोल उठी। पत्थरों तक का कलेजा कांप उठा। किन्तु नहीं पसीजा उस चण्डाल

ब्राह्मण का हृदय। क्रोध के आवेश में थोड़े से अङ्गार उसने और रख दिये।

कुमार ने उसके किसी काम में बाधा न डाली। अपने अटल ध्यान में उनका मन लगा था, वह उसी तरह लगा रहा। राग-द्वेष, सुख-दुख, इच्छा-अनिच्छा सबसे ऊपर, सबसे परे! उनके इस निर्विरोध और निर्विकार रूप के आगे आततायी ब्राह्मण को अपनी पराजय मूर्तिमान दिखने लगी। वह कुमार की मौन मूर्ति के आगे स्तब्ध खड़ा रहा।

★

परित्यक्ता

दो प्राणी चले जा रहे थे । कहां किस ओर वह उन्हें भी मालूम न था । घंटों चलते चलते उनके सुकुमार पैर धैर्य खो बैठे । उनके पैरों में फफोले उठ आये । गर्मी की भयंकर जलती दुपहरी थी फिर भी वे आगे बढ़े चले जा रहे थे, अनिश्चित मंजिल की ओर । कंठ सूख रहे थे ओठों पर कठाई जम गई । देह पसीने से तर हो गई । जो सुकुमारी कभी एक फर्लांग भी पैदल नहीं चली थी वही आज नियति की मारी इस प्रचंड दुपहरी में भी नंगे पैर चल रही थी । जिसके दर्शन देव दुर्लभ थे आज वही इस निर्जन पथ की पथिक बनी हुई थी । दिन ढलने को था फिर भी दोनों मौन एक दूसरे पर तरस खाते हुए बढ़े चले जा रहे थे । पुरुष नल और स्त्री दमयंती । दमयती काफी थक चुकी थी अब और अधिक धैर्य रखना उसके लिए असह्य हो गया ।

उसने अत्यन्त क्षीण स्वर में कहा—नाथ ! सूर्य देव अपने घर की ओर जा रहे हैं अन्धकार घना हो रहा है अब हमें भी ..।

हां प्रिये ! अब कहीं अच्छे स्थान पर ठहर जाना ही अच्छा होगा । एक घने वृक्ष के नीचे उन्होंने अपना पड़ाव डाल दिया ।

कुछ समय तक विश्राम कर लेने पर नल ने कहा—मैं फल फूल की तलाश में जाता हूँ । देखें कुछ मिलता है या नहीं ।

हां देख लीजिए। प्यास भी बहुत ओर से लगी हुई है—दमयंती ने जीभ से ओठों को तर करते हुए कहा।

नल ने कहा— देखता हूँ कहीं जल मिल जाय।

किसी तरह कुछ फल और पानी लेकर नल पूर्व स्थान पर पहुंचा तो देखा दमयंती निशंक सो रही है। नल ने सोचा-ओह क्या बेफिक्री से सो रही है! इतनी अधिक थक गई कि भूखी प्यासी ही सो गई। आध घंटा भी राह न देख सकी। भाग्य की बात है इसे मेरे कारण यह दिन भी देखने थे। वरना कहां राजमहल की कोमल मखमली शय्या और कहां पेड़ तले यह ऊबड़ खाबड़ जमीन। कुछ देर पश्चात् नल ने धीरे से दमयंती को जगाकर कहा—प्रिये! उठकर देखो तो मैं तुम्हारे लिए क्या लाया हूं।

दोनों ने मिलकर थोड़ा थोड़ा खाकर संतोष की सांस ली। दमयंती की आंखों में नींद भरी हुई थी बार बार उबासियां ले रही थी। यह देखकर नल ने कहा-तुम अब सो जाओ दमयंती।

और आप? पूछा दमयंती ने

मैं भी सोजाऊंगा। तुम सो जाओ।

एक दिन जब किसी भी तरह थोड़े से भी फलफूल नहीं मिले तो नल ने कहा—मेरी एक बात मानोगी प्रिये?

दमयंती ने व्यग्र होते हुए कहा—जल्दी आज्ञा कीजिए आज आपको यह संदेह कैसे हुआ कि मैं आपकी आज्ञा टाल दूंगी।

नल बोले—संदेह नहीं है किन्तु डर है कि कहीं तुम अस्वीकार—

आप आज्ञा तो दीजिये—दमयंती ने बीच ही में बोलते हुए कहा।

नल ने कहा—तुम कुंडिनपुर या कौशल क्यों नहीं लौट जातीं ?

यह कैसे हो सकता है प्रभो ! आपको जंगल में अकेले इस दशा में छोड़कर मैं राजमहलों में रहूँ यह मुझसे कभी नहीं हो सकता। जैसी भी रहूंगी आपके साथ रहूंगी। आपका साथ छोड़कर कहीं भी जाना नहीं चाहती—कुछ निकट सरकते हुए उसने कहा।

किन्तु तुम ··

मुझे क्षमा करें। इस विषय में मैं कुछ भी सुनना नहीं चाहती। उसके स्वर में दृढ़ निश्चय था।

नल ने एक दीर्घ विश्वास छोड़ते हुए कहा—यह तो मैं पहले ही से जानता था।

रात पड़ गई। चारों ओर जंगल में पक्षियों का कलरव बन्द हो गया। सब पक्षी अपने अपने नीड़ों में विश्रान्ति के लिए चले गए। दमयंती को भी नींद आ गई।

किन्तु नल, उसे चैन कहां ? दमयंती का मुर्झाया हुआ मुख उसके सामने था। देह तो अब आधी भी नहीं रह गई थी। नंगे पैरों चलने के कारण जगह जगह घाव पड़ गए थे। वस्त्र झाड़ियों में उलझ उलझ कर तार तार हो गए थे। इस तरह कब तक दमयंती अधूरे पेट फल-फूल खाकर जिन्दा रह सकेगी।

किन्तु अन्य कोई उपाय भी तो नहीं दिखता। अगर दमयंती को छोड़कर चला जाऊं, किन्तु दमयंती का क्या होगा। वह कहां जायगी? अकेली बन में कहां भटकेगी? और मेरा क्या यही कर्तव्य है? वह दृश्य उसकी आंखों में तैर गया जब स्वयंवर में राजकुमारी दमयंती ने उपस्थित बड़े बड़े राजाओं को छोड़कर उसे वरमाला पहनाई थी। यह सुनकर कि यह कोशल के वीर राजकुमार नल हैं। जिनकी वीरता जगत प्रसिद्ध है। एक हुंकार से शत्रु कांप उठते हैं। कलाओं में निपुण, विद्या प्रेमी, और परोपकार के लिए मर मिटने वाले हैं। क्या इसी आशा पर उसने वरा था। धिक्कार है मुझे जो अपनी आफत टालने की गरज से उसे त्याग जाने की सोचता हूँ किन्तु इससे दमयंती का तो भला नहीं होगा। उसने दमयंती के चीर पर लिखा—प्रिये मैं तुम्हें अकेली छोड़कर जा रहा हूं किन्तु कहां यह मैं स्वयं नहीं जानता। तुम्हें इस अवस्था मे अकेली छोड़ने को जी नहीं चाहता किन्तु अन्य कोई उपाय भी नहीं है। मेरे रहते तुम कभी मेरे इस कठोर आदेश को पालन नहीं कर सकती। इसलिए मैं तुम्हें इस भयंकर सुनसान बन में अकेली छोड़कर जा रहा हूं। इसी वृक्ष के निकट से जो दो मार्ग जाते हैं-उसमें पूर्व दिशा का मार्ग कुंडिनपुर को और पश्चिम का कोशल को। अब यह तुम्हारी इच्छा है कि तुम किसी एक को चुनो। यह लिखकर नल आगे बढ़ने लगा किन्तु पैर मोम हो रहे थे। चारों ओर से उसे धिक्कार सुनाई दे रहा था। वह पागलों की तरह चिल्ला पड़ा मैं निर्दोष हूँ। यह सब मैंने

दमयन्ती के भले के लिए किया है। मेरा इसमें कुछ भी दोष नहीं। पृथ्वी और आकाश के देवताओ! तुम साक्षी रहना। अपनी प्रीया के प्रति नल अन्याय नहीं कर रहा है। उसके मंगल की कामना से वह उसे त्याग कर जा रहा है और वही पवित्र भावना उसकी रक्षा करेगी, उसे संकट पथ से निर्विघ्न पार करेगी। और वह बेतहाशा भाग चला अनिश्चित मंजिल की ओर।

★

पांच

अतिमुक्त

भगवान महावीर के प्रिय शिष्य गौतम एक बार पोलासपुर नगर के राजमहलों के निकट से होकर जा रहे थे। वहीं पर राजकुमार अतिमुक्त खेल रहे थे। अचानक उनकी दृष्टि जाते हुए साधु पर पड़ी। उनकी प्रभावशाली प्रतिभा तथा विचित्र वेश से कुमार बहुत प्रभावित हुए। वे खेल छोड़कर साधु की तरफ आये और पूछा—महाशय ! आप कौन हैं ? आप कहां से आये हैं ?

गौतम ने अपनी सहज मृदुता के साथ कहा—हम जैन साधु हैं कुमार !

आप जैन साधु हैं। आप क्या काम करते हैं ? कुमार की जिज्ञासा बढ़ी।

हम लोग धंधे के रूप में कुछ काम नहीं करते कुमार ! हमने दुनिया के समस्त धंधे त्याग दिये। दिन रात आत्मकल्याण में लगे रहना ही हमारा काम है।

किन्तु आपकी गुजर कैसे चलती है ?— कुछ सोचकर कुमार ने पूछा।

हम साधुओं की गुजर का क्या। हमें इसकी चिन्ता नहीं। गृहस्थों के यहां जहां से भी शुद्ध आहार मिल जाता है ग्रहण कर लेते हैं। कभी नहीं भी मिलता तो भी हम असंतोष नहीं

करते । ये काष्ठ के पात्र आहार के लिए हैं । फिर रुपये-पैसे व्यापार धंधे की क्या जरूरत ?

आपका निवास स्थान कहां है ?—कुमार ने फिर प्रश्न किया।

न तो हमारा कोई स्थान है और न हम एक स्थान में रहते ही हैं, देश देश घूमते रहते हैं । अपने वीर प्रभु का संदेश सुनाते हैं । यहां पर हम अपने प्रभु के साथ नगर के बाहर उद्यान में ठहरे हुए हैं ।

' फिर तो आपने बहुत देश देखे होंगे । क्या आपके प्रभु का मैं दर्शन कर सकता हूं ?

हां हां, अवश्य । तुम तो क्या वहां किसी के लिए प्रतिबंध नहीं । उच्च नीच जो भी चाहे सहर्ष आ सकता है । भगवान् के धर्मराज्य में सबके लिये समान स्थान है ।

तब तो मैं अवश्य आऊँगा । आप भी वहां मिलेंगे न ? क्या इस समय भी आप वहीं पधार रहे हैं ?

नहीं कुमार ! इस समय भिक्षाटन को निकला हुआ हूं । किन्तु अन्य समय प्रभु के चरणों में ही मिलूँगा ।

यह तो और अच्छी बात है । क्या आप महलों तक पधारने की कृपा करेंगे ?

गौतम उस बालक की निष्कपट बातों से बहुत खुश हुए । उन्होंने हंसकर कहा—चलो । जहां भी हमें अपने नियमों के अनुसार आहार मिल जाता है हम ग्रहण कर लेते हैं ।

कुमार ने प्रसन्न होते हुए कहा— तब पधारिये देव।

× × × ×

कुमार जब पहुँचे तब भगवान् महावीर उपदेश दे रहे थे-हे मोक्ष के अभिलाषी जनो ! मोह का परित्याग करो । अपने कुल मे लगाई हुई ममता को छोड़कर समस्त विश्व को बन्धुत्व की दृष्टि से देखो । बन्धुत्व की दृष्टि से देखने पर समस्त आत्माए समान मालूम होने लगेगी । उच्च नीच का भेद भाव भी तुम्हारे में न रहेगा । समस्त संसार को अपना घर समझो । दुनियां के जीवों को अपने सदृश मानो । संसार के सारे प्राणियों को अपने कुटुम्बियों की तरह मानने की कोशिश करो ।

जो अपने स्थूल जड़ शरीर को ही अपना मानता है वह मनुष्य अधम से भी अधम है । जो पुत्र, स्त्री आदि कुटुम्बियों को अपना समझता है अधम है । अपने गाव वालों को अपना माननेवाला मनुष्य मध्यम तथा जन्मभूमि को सदा अपने रूप मे मानने वाला उत्तम है । किन्तु सर्वोत्तम मनुष्य वह है जिसके विशाल हृदय मे सारा ससार अपने रूप मे प्रतिभासित हो रहा है । इसका एक मात्र उपाय बन्धुत्व की भावना है ।

कुमार पर उपदेश का असर जादू सा हुआ । उनकी आंखें एक दिव्य ज्योति से चमकने लगीं । कुमार ने कहा- महाप्रभो ! अब तो मैं आपही की शरण में रहूंगा ।

भगवान् ने फरमाया—वत्स ! यह कैसे हो सकता है ? पहिले अपने पूज्य गुरुजनों की सम्मति ले लो । उसके बाद हम तुम्हें दीक्षा देगे ।

कुमार ने कहा—यद्यपि हृदय तो नहीं मानता कि आपकी शरण से लौट जाऊं किन्तु आपकी आज्ञा शिरोधार्य है ।

× × × ×

कुमार की इच्छा सुनकर महाराज तथा महारानी प्रसन्न न हो सके । उन्होंने कहा—यह क्या बात कह रहे हो कुमार ! ऐसी इच्छा तो हमें करनी चाहिये । अब हमारी अवस्था इस योग्य है कि हम धर्म कार्य में अपना जीवन लगायें किन्तु तुम्हारा मोह नहीं छूटता । देखते हैं तुम कुछ बडे हो जाओ तो तुम्हारा विवाह करके राजपाट तुम्हें सौंपकर निश्चिंतता से दीक्षा ग्रहण करें । तुम तो अभी बहुत छोटे हो । अभी तक तुमने दुनिया के सुख दुख देखे ही क्या हैं जो दुख से छुटकारा पाना चाहते हो । जरा सोचो तो तुम्हारे लिए ये विचार कहा तक उपयुक्त हैं ? उस महान किन्तु कठिन पथ को ग्रहण करने की अवस्था अभी तक तुम्हारी नहीं है कुमार ! कहते कहते महाराज की आखे डबडबा गईं।

कुमार अत्यन्त ही स्वाभाविक ढग से बोले—आपका कहना ठीक है । किन्तु अब मैं और अधिक इन महलों में नहीं रहना चाहता । मुझे ऐसा लग रहा है जैसे मेरा दम घुट जायगा । वीर प्रभु की शरण मे जाने के लिए छटपटा रहा है । अब मैं क्षण भर का भी प्रमाद करना नहीं चाहता । आप मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये जिससे अपने ध्येय मे सफल होऊं।

महाराज तथा महारानी जब किसी भी प्रकार कुमार के विचारों में परिवर्तन न कर सके तब विवश होकर आज्ञा देनी ही पड़ी।

× × × ×

एक दिन मुनिकुमार साधुओं के साथ नगर के बाहर शौच के लिए जा रहे थे। थोड़ी देर पहले वर्षा हुई थी। वर्षा की ऋतु होने के कारण स्थान स्थान पर नाले बह रहे थे। ठंडी हवा चल रही थी। जमीन पर दूब का हरा मखमली गलीचा बिछा हुआ था। प्रकृति बहुत ही सुहावनी लग रही थी। बहते नालों को देखकर कुमार का मन चंचल हो उठा। बचपन के खेल उनकी आंखों मे तैरने लगे। वे गढ़ा खोदकर उसमें पानी भरकर तालाब बनाते थे फिर हल्की कागज की नाव बनाकर बीच भंवर में उसे छोड़ देते थे तथा किनारे का पानी हिलाने लगते। और उस समय तो और भी मजा आता जब वह छोटी सी नाव पानी की तरंगों से डगमग डोलने लगती। कृत्रिम हवा से नाव को तूफान का भी सामना करना पड़ता पर क्या मजाल उनकी नाव डूब जाय। किन्तु चम्पा की नाव वह क्या ठहर सकती थी? तूफान के एक ही झोंके से उलट जाती किन्तु वह भी तो दुष्ट कम न थी। झट से चिल्ला उठती देखो कुमार! तुम्हारी नाव बेचारी तूफान को न संभाल सकी और एक ही झोंके से उलट गई। चोरी और सीनाजोरी। कुमार उसके कान ऐठकर माताजी के समक्ष ले जाते, कहते—देखिये माताजी इस चम्पा की शैतानी अपनी नाव डूब गई तो मेरी नाव को अपनी बता रही है। और इन्होंने मेरे कान कितने जोर से ऐंठ दिये, कान दिखाती हुई चम्पा कहती।

और तब हंसकर माताजी कहतीं—लड़कियों पर हाथ नहीं उठाना चाहिये कुमार ! तुम दोनों की अब अलग अलग थोडे ही है। जाओ खेलो। और दोनों एक दूसरे को देखकर अपनी हंसी को न रोक सकते। दोनों में सुलह हो जाती। कुमार अब अपने को और अधिक न रोक सके तुरन्त अपने हाथ में का काष्ठपात्र उस नाले मे छोड़ दिया और बचपन की तरह ही खुश होकर चिल्लाने लगे, आओ देखो-मेरी नाव तिरे रे, मेरी नाव तिरे।

साथ के साधुओं ने देखा तो कहने लगे—यह क्या कर रहे हो मधु? किन्तु कुमार अपने खेल में मस्त थे। अन्त मे साधुओं ने कहा—चलो ये नहीं मानेगे। एक बोला—भगवान् ने भी क्या समझ कर दीक्षा दी है जिसे इतनी भी समझ नहीं।

दूसरा बोला—प्रभु ने कुछ सोच समझ कर ही दीक्षा दी होगी। उनकी आलोचना करने का हमे अधिकार नहीं।

तीसरा बोला—वाह अधिकार क्यों नहीं हर मनुष्य को अपने विचार रखने का अधिकार है। कुछ भी हो इस तरह की दीक्षा हितकर नहीं हो सकती। इन्हें ही देखो ना कहने पर भी नहीं सुनते।

उनमे से एक वृद्ध साधु ने कहा—हर एक वस्तु को एकान्त रूप से नहीं कहा जा सकता। जो दिल में आया तत्काल निर्णय दे देने के पूर्व भगवान् से निर्णय कर लेना चाहिये।

सब साधु भगवान् महावीर के पास पहुचे और अपने बीच उठ रही शंकाओं का समाधान चाहा ।

भगवान् ने फरमाया—साधुओ, तुम्हारे दिलों मे यह संशय हो गया है कि मैंने इतनी छोटी अवस्था मे दीक्षा क्यों दी ? तुम लोगों को यह संशय होना स्वाभाविक ही है। पर साधुजनो ! तुम ने उन्हें जंगल में बिल्कुल अकेले छोड़कर क्या उचित काम किया? क्या तुम्हारा यही कर्तव्य था ? यद्यपि कुमार को इस खेल से एक महान् प्रेरणा मिलेगी और इसी प्रेरणा से वे इसी भव में मोक्ष प्राप्त करेंगे । यद्यपि ज्ञान द्वारा यह सब मैं देख रहा हू किन्तु आने वाली पीढ़ियों को द्रव्य क्षेत्र काल भाव देखकर ही कदम उठाना चाहिये । उनके लिए मेरा अन्धानुमरण किसी प्रकार योग्य नहीं । ऐसा करके वे मेरे उद्देश्य को पूरा न करेंगे ।

प्रभु के कथनानुसार कुमार को इससे जबरदस्त प्रेरणा मिली । कुछ समय बाद ही उन्हें साधुत्व का ज्ञान हुआ तो उनका हृदय पश्चात्ताप से भर गया । उन्होंने सोचा–अरे मै यह क्या कर रहा था ? मै तो ससार से अपनी जीवन नौका को पार लगाने निकला था । साधुजन मुझे ठीक ही कह रहे थे किन्तु मैंने उनकी अवहेलना करके न केवल अपना अहित ही किया किन्तु गुरुजनों का अपमान भी किया । इनका हृदय पश्चात्ताप से भर गया । कुमार की कठोर साधना सफल हुई । अपनी जीवन नौका को भवसागर से पार लगाकर उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया ।

★

तपस्या : कसौटी पर

नहीं नहीं ऐसा कभी नहीं हो सकता चम्पा ! वे आयेंगे और देखना एक दिन अवश्य आयेंगे । मैं उन्हें खूब जानती हू । मैं उनके बिना जिन्दा नहीं रह सकती । वे मुझे कभी नहीं भूल सकते । मैंने उनके साथ एक दो नहीं बारह वर्ष बिताये हैं । वे मुझसे कभी नहीं रूठ सकते । इसी एक सहारे पर मैं ·····

यह मैं जानती हू रानी ! पर नगर के सरदारों को कैसे समझाऊ जो प्रतिदिन मेरे कान खाते हैं । जो आज भी मेरी रानी की एक मुसकान पर सब कुछ न्योछावर करने को तैयार हैं—कोशा की प्रिय दासी ने विचित्र दृष्टि फेकते हुए कहा ।

मेरे शरीर पर मेरा अधिकार नहीं चम्पा । यह तुम अच्छी तरह जानती हो । यह ठीक है कि मैं एक वेश्या हूं, नहीं कभी थी किन्तु अब अबतो सिर्फ स्थूलिभद्र की दासी हू । उन्हें अपना सर्वस्व अर्पण कर मैंने अपना सर्वस्व खो दिया है । मेरा सब कुछ उन चरणों पर न्योछावर है । उन्हें कह दो चम्पा ! कोशा स्थूलिभद्र की है जब तक उसके प्राण में एक भी सास बाकी है वह अन्य किसी की नहीं हो सकती । बिना मालिक का सूना घर देखकर डाका डालने की विफल चेष्टा न करें-- कहते कहते उसकी छाती गर्व से फूल गई । आखों में एक अपूर्व तेज व्याप्त हो गया ।

चम्पा ने बचपन से अपनी गोदी में कोशा को पाला था। वह उसकी पीड़ा को समझती थी। आंखों के आंसू पोंछते हुए कहा—ऐसा ही होगा रानी बिटिया, ऐसा ही होगा। किसकी मजाल है जो तुम्हारी मर्जी के खिलाफ एक नजर भी इस ओर डाले।

× × × ×

एक समय था जब समस्त पाटलिपुत्र नगर में कोशा के नाम की धूम थी। बच्चे बच्चे की जबान पर कोशा के सुरीले कंठ से गाए हुए गीत थे। राज्य का ऐसा कौन सा सरदार उमराव अमीर था जो उसको देहली पर नाक न रगड़ता हो। जिसने उसे एक बार देख लिया जिसने उनका मधुर संगीत सुन लिया वह उसका हो गया। जिसकी तरफ एक बांकी चितवन फेंक देती वह निहाल हो जाता। किन्तु अधिक दिनों तक वह पाटली की स्त्रियों का कांटा बनकर न रही। मंत्रीपुत्र स्थूलिभद्र कुछ ऐसा मोहित हुआ कि घर बार छोड़ कोशा के यहां डेरे डाल दिये। स्थूलिभद्र के प्रेम ने उसे पागल बना दिया। उसे जीत लिया। उसने बाहरी दुनियां से बिल्कुल अपना नाता तोड़ दिया। अब स्थूलिभद्र कोशा के थे और कोशा स्थूलिभद्र की।

ज्यों ज्यों समय बीतता गया लोग कोशा को भूल से गये। समय ने अपने पर्दे के पीछे कोशा को इस तरह छिपा लिया मानों कोशा नाम की कोई स्त्री थी ही नहीं। परन्तु अचानक स्थूलिभद्र के चले जाने पर फिर पुराने प्रेमी रसिकों का ध्यान

लिया। सौन्दर्यरानी कोशा के कोकिल कंठ से छेड़ी हुई संगीत लहरी का भला कौन कायल न था। सबके बुलावे गये किन्तु बिच्छू के डंक सा एक उत्तर मिलता था। कोशा अपने प्रियतम स्थूलिभद्र के वियोग में संतप्त थी, दुखी थी। उसका सौन्दर्य उसकी कला सब कुछ ही तो स्थूलिभद्र के बिना फीकी है, निर्जीव है। बारह बारह वर्ष तक कोशा स्थूलिभद्र की होकर रही, अब दूसरे की किसकी बने।

× × × ×

स्वच्छ श्वेत आसन पर एक प्रतिभावान् तेजस्वी वयोवृद्ध साधु बैठे थे। जिनके अंग अंग से शान्ति टपक रही थी। भव्य विशाल ललाट पर गंभीर विचार, गहन ज्ञान की झांकी स्पष्ट थी। उनके पास चार साधु बैठे थे। जिनके मुख से श्रद्धा और आदर का भाव टपक रहा था। जिससे पता चलता [illegible] ही उनके गुरु हैं।

साधु ने शान्ति भंग करते हुए अपनी अमृतमयी आकर्षक वाणी में एक की ओर लक्ष्य करके कहा—क्यों इस बार तुम्हारा कहां पर चातुर्मास बिताने का विचार है?

उसने विनीत भाव से कहा-मेरा विचार तो इस बार किसी सूने कूप पर बिताने का है। फिर जैसी गुरुदेव की आज्ञा।

उसे सहर्ष स्वीकृति मिल गई। और इसी तरह दूसरे को सिंह की गुफा के द्वार पर और तीसरे को सर्प की बांबी के पास अपना चातुर्मास बिताने की आज्ञा मिल गई।

अब सबसे छोटे साधु स्थूलिभद्र की बारी थी। सबका ध्यान उस ओर खिच गया। स्थूलिभद्र ने हाथ जोड़कर कहा-अगर आज्ञा हो तो कोशा गणिका के यहां अपना चातुर्मास करूं ?

गुरुदेव ने इन्हें भी स्वीकृति दे दी।

साथ के अन्य साधु मुस्कराए। एक दूसरे से कानाफूसी होने लगी-विचार तो अच्छा है। जिसके यहाँ बारह बारह वर्ष बिताये वह क्या इतनी जल्दी भुलाई जा सकती है। इस बार पुन उसके पंजे से निकल आये तो पता चले। गुरुदेव ने भी तो तत्काल स्वीकृति दे दी। आचार्य से यह कानापूंसी छिपी न रही किन्तु वे बिना कुछ बोले ही वहा से उठकर चले गये।

× × × ×

अरे! यह साधु इधर क्यों चला आ रहा है ? शायद इसे मालूम नहीं कि यह कोई स्थानक नहीं किन्तु पाटली की प्रसिद्ध गणिका का भवन है। कोशा की परिचारिकाओं मे से एक ने कहा।

दूसरी ने ठेलते हुए कहा-जा उसे बतादे कोई परदेशी मालूम पड़ता है।

तूं ही कह देना डरती क्यों है। तुम्हारे वीरभद्र की तरह ये साधु लोग प्रेम के ‥ ‥।

धत् ज्यादा बात अच्छी नहीं। मैं अभी कहती हूं। महाराज यह एक गणिका का भवन है आप शायद भूल से ‥ ‥।

आगन्तुक साधु ने बड़े गंभीर स्वर में कहा—मैं जानता हू। आप किसी से मिलना चाहते हैं शायद ?

हां तुम्हारी मालकिन ही से मिलना चाहता हूँ । अन्दर हैं ? हा महाराज वे अन्दर ही हैं । क्षमा करें आपका शुभ नाम ? नाम ? साधु मुस्कराए। साधुओं का कुछ नाम धाम नहीं होता। मैं अभी सूचना देती हू ।

× × × ×

दासी बोली-द्वार पर एक साधु खड़े हैं जो आपसे मिलना चाहते हैं ।

मुझसे एक साधु मिलना चाहते हैं, किन्तु क्यों ? क्या नाम है उनका ? साश्चर्य कोशा बोली ।

जी, नाम तो बताते ही नहीं । मैंने पूछा तो कहने लगे साधुओं का नाम नहीं होता । बहुत विचित्र किन्तु तेजस्वी लगते हैं ।

हू । कोशा मुसकराई। अच्छा जा ले आ। कोशा ने अभी अपना वाक्य पूरा भी नहीं किया था कि साधु स्वयं भीतर आगए । भवन की एक एक जगह जैसे उनकी परिचित जानी पहचानी हुई हो । सीधे कोशा के महल तक चले आये । कोशा चित्र लिखितसी रह गई । यह साधु, इसे कहीं देखा है । कहीं स्थूलि भद्र तो नहीं है ? नहीं नहीं यह कैसे हो सकता है वे और इस वेश में कभी नहीं । तो फिर कौन है पूछ लूं ? फिर पहचानने का प्रयत्न किया । एकटक देखती रही—वही तेज, वही सौम्य मुखमुद्रा, किन्तु आखों में मद की जगह शांति टपक रही है । कहीं वह स्वप्न तो नहीं देख रही है, उसकी आखें उसे धोखा

तो नहीं दे रही हैं ? निश्चय कुछ न कर सकी। दिल में विचारों का एक तूफान सा उठ गया। आप, आप मुझसे ·····

हां स्थूलिभद्र ने उत्तर दिया। मैं यहां अपना चातुर्मास बिताना चाहता हूँ। यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो।

वाणी में वही जादू। स्वर में वही मिठास। कहीं आप आप स्थूलिभद्र······।

हां कोशा ! क्या स्थूलिभद्र को इतना जल्दी भूल गई ?

स्थूलिभद्र ! कोशा का सर चकराने लगा। विश्वास करे तो कैसे, उसका सरताज इस वेश में। घुंघराले बालों के स्थान में मुंडन किया हुआ सिर। पैर धूल से भरे हुए। बहुमूल्य वस्त्रों के स्थान पर श्वेत सादे वस्त्र। उसे अपने कर्त्तव्य का ज्ञान न रहा। सुध बुध खो बैठी। सोचा था स्थूलिभद्र के मिलने पर वह उन्हें मीठे उपालम्भ देगी। तब तक रूठी रहेगी जब तक वह उनसे यहीं रहने की प्रतिज्ञा न करवा लेगी।

किन्तु ये तो वे स्थूलिभद्र नहीं। उसकी आंखों से अविरल धार बह चली। वह अपने को और अधिक न संभाल सकी। वहीं बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ी।

दासियां कोशा की यह दशा देखकर घबरा गई। मालकिन को होश में लाने की चेष्टा में इधर उधर दौड़ पड़ी। गुलाब जल छिड़का गया। शीतल मन्द मन्द बयार से कुछ समय बाद कोशा को होश आया। वह उठ बैठी। और इस तरह देखने लगी

मानो वह कोई स्वप्न देखकर उठी है। चकित कोशा ने अपने समक्ष स्थूलिभद्र को खड़े देखा। उसे ध्यान आया कि उसे उठकर स्थूलिभद्र का स्वागत करना चाहिये। निष्ठुर स्थूलिभद्र का स्वागत जो उसे त्याग गये। कुछ व्यंग भरे स्वर में बोली—एकाएक श्रीमान् को इस दासी की सुध कैसे आगई? वह यह भूल गई कि स्थूलिभद्र के वियोग में वह अपने दिन किस प्रकार काट रही थी। स्थूलिभद्र के दर्शन करने के लिए किस कदर तरस रही थी। किन्तु आज जब वे स्वयं आगये तब आदर देना तो दूर रहा सीधे मुंह बात करना भी न रुचा।

स्थूलिभद्र बोले—शायद तुम बैठने की भी इजाजत नहीं दोगी? कितनी मंजिल ते करके आ रहा हूं, जानती हो? चमकीली विचित्र आंखों का दिव्य तेज मूक कोशा पर फेंकते हुए कहा।

कोशा ऊपर से नीचे तक जल उठी। तत्काल बोल उठी—क्यों सारा महल, धन दौलत, और स्वयं मैं भी तो तुम्हारी ही हूँ भला मैं क्या इजाजत दूं। इस तरह कहकर मुझे जलाने से आपको क्या मिलता है? आप संगीतशाला में ही रहना पसन्द करेंगे न? मैं यह जानती हूं किन्तु फिर भी···कहते कहते कोशा का गला रुंध गया।

मुझे कहीं भी ठहरने में आपत्ति नहीं किन्तु वहां का सारा सामान··· ।

क्यों क्या पड़े रहने से फिर फस जाने का भय है-एक विचित्र तीक्ष्ण दृष्टि डालते हुए कोशा ने कहा।

साधु मुस्कराए। नहीं कोशा यह बात नहीं है। अगर भय होता तो यहां आता ही क्यों? हमारे नियम ही कुछ ऐसे हैं कि-

और बारह वर्ष तक ये नियम कहां गये थे। क्या मैं जान सकती हूं? उसके स्वर में जिज्ञासा की जगह व्यंग ही अधिक था।

तब मैं अंधकार में था कोशा! माया मोह का आवरण आया हुआ था। तुम्हारा प्रेम मुझे कुछ भी सोचने का मौका नहीं देता था। मैं तुम्हारे प्रेम में डूबा हुआ था। विषयवासना में इतना उलझ गया कि अपना सत्व ही भूल गया। जीवन की यह निस्सारता उस समय उल्टी ही लगती थी।

तो क्या अब इस प्रेम कुटिया में अन्य कोई वस्तु की लालसा लेकर आए हो? क्या अब मेरा स्वार्थी प्रेम तुम्हारे पथ का कांटा नहीं बनेगा?-और वह टकटकी लगाकर देखने लगी अपने वाक्य का प्रभाव।

नहीं कोशा! अब तुम्हारा प्रेम मेरे पथ का कांटा नहीं बन सकता। किन्तु और सहायक होगा। मैं तो तुम्हें भी ससार की निस्सारता बताना चाहता हूं।

सत्य का दर्शन कराना चाहता हूं। दुनियां यह न कहदे कि स्थूलिभद्र स्वार्थी था, उसने कोशा को धोखा दिया। तुम्हारा यह प्रेम मेरे तक ही सीमित न रह जाय।

देख लूंगी, कोशा ने कुछ गर्वित कठ से कहा।

स्थूलिभद्र मुसकराकर रह गये। उन्होंने सोचा इसे अब भी यह आशा है कि वह अपने प्रेम से स्थूलिभद्र को फिर वैसा ही विलासी बना देगी?

× × × ×

दोनों का द्वंद युद्ध प्रारंभ हो गया। कोशा काम बाण छोड़ रही थी। उसने स्थूलिभद्र को रिझाने के लिए अपनी समस्त शक्ति लगादी। उसे अपनी तिरछी चितवन का बड़ा गुमान था। उसे पूरा विश्वास था कि वह अपने कार्य में अवश्य सफल होगी। उधर तपस्वी स्थूलिभद्र तो तैयार होकर ही आए थे।

कोशा ने सोचा कुछ भी हो स्थूलिभद्र उसके हैं। भले ही कुछ दिनों के लिए साधुओं के चक्कर में पड़कर त्याग और तपस्या की बातें करने लगे हैं। पर आखिर वह उन्हें अपना बना के रहेगी। उसका मन आज अत्यन्त प्रसन्न था। आज वर्षों के बाद फिर उसे अपने प्यारे को भोजन कराने का सुअवसर प्राप्त होगा। इसकी कल्पना मात्र से ही उसका तन मन प्रफुल्लित हो उठा। उसने पूरी तैयारी करके अपने हाथ से भोजन बनाया। उससे छिपा न था कि स्थूलिभद्र को क्या पसन्द है और क्या नापसन्द है। स्वादिष्ट से स्वादिष्ट भोजन एक स्वर्णथाल में लेकर स्थूलिभद्र की तरफ सबसे आगे अपनी पायलिया से रुमझुम की मधुर मादक स्वर लहरी छेड़ती हुई चली। आज उसके अंग अग से

विह्वल बना देने वाली मस्ती टपक रही थी। किन्तु जिसके लिए यह सब हो रहा था वह तो गंभीरमुद्रा में इस दुनियां से परे विचारों की दुनियां में विचर रहे थे।

कोशा ने मन्द किन्तु संगीतमय शब्दों में कहा—ध्यानीजी महाराज ! जरा ध्यानमुद्रा खोलिये। दासी भोजन लेकर आई है।

स्थूलिभद्र चौंके आंख उठाकर देखा, कोशा के अंग अंग मस्ती में नाच रहे थे। बहुमूल्य अलंकार और बहुमूल्य परिधान उस के अंगों की शोभा बढ़ा रहे थे। एक हाथ में भोजन सामग्री से भरा हुआ थाल था और पीछे पीछे और भी दो तीन दासियां सामग्री लिए खड़ी थीं।

स्थूलिभद्र ने गंभीर स्वर में पूछा—यह सब क्या है कोशा ?

कुछ भी तो नहीं। रूखी सूखी जो भी है इस दासी पर दया करके भोजन कीजिये।

इतनी सारी सामग्री एक मनुष्य के लिए। यह सब व्यर्थ क्यों किया ? यह सब हमारे किसी काम की नहीं कोशा !

" यह सब किसी काम की नहीं। " सब व्यर्थ है कोशा को यह वाक्य तीर सा लगा। बारह बर्ष तक कोशा ने हाथ से खिलाया है। वह अच्छी तरह जानती है कि स्थूलिभद्र को क्या पसन्द है और क्या नहीं। किन्तु आज तो उन्होंने एक नई ही समस्या उपस्थित करदी। क्या उसका पुराना ज्ञान अब किसी काम का नहीं रहा।

स्थूलिभद्र कोशा के मन की बात ताड़ गये। उन्होंने कहा—कोशा इसमे बुरा मानने की और नाराज होने की बात नहीं। हम साधु हैं। हमारे निमित्त बनाई हुई वस्तु हम ग्रहण नहीं कर सकते। सबके भोजन के पश्चात् जो कुछ बचा हुआ मिल जाता है हम उसमें से घर घर घूमकर ले लेते हैं। स्थूलिभद्र अब वह स्थूलि-भद्र नहीं रहा जिसकी आवश्यकताओं का पार ही नहीं था। आखिर इतना सब झंझट इस नश्वर देह के लिए! हम जीने के लिए खाते हैं कोशा, खाने के लिए नहीं जीते, और उन्होंने एक अद्भुत दृष्टि फेंकी।

कोशा का हृदय भर गाया। उसकी सारी मेहनत व्यर्थ गई। उसका उसे जितना दुख नहीं था उतना था अपने प्यारे के इस त्यागमय कठिन जीवन के नियमों का। उसने फिर साहस बटोर कर कहा—थोड़ा सा ही खा लेते। कितना समय हो गया कुछ भी नहीं खाया-कहते कहते कोशा की आंखों का धैर्य छूट गया।

स्थूलिभद्र फिर बोले-तुम्हें इसके लिए दुख नहीं करना चाहिये। हम साधुओं का क्या। जहां भी शुद्ध आहार मिल गया ग्रहण कर लिया। हम तो महीनों निराहार रहने के अभ्यासी हैं।

यद्यपि स्थूलिभद्र ने अपनी स्थिति बिल्कुल साफ करदी थी किन्तु फिर भी कोशा का हृदय नहीं मान रहा था। उसने फिर एक बार आग्रह के स्वर में कहा-तो क्या सचमुच इसमें से कुछ भी नहीं लोगे?

नहीं कोशा। यह हमारे नियम विरुद्ध है। अभी तो बहुत दिन पड़े हैं।

आशा बंधानी आपको बहुत आती है, और वह तुरन्त वहां से चली गई। सारी सामग्री ज्यों की त्यों पड़ी रही। किसी ने आंख उठाकर भी उस ओर नहीं देखा। पराजित कोशा घंटों बिस्तर पर पड़ी तड़फती रही। बारह वर्ष बाद अपने प्यारे को पाया भी तो किस दशा में। आज उसको वह पाकर भी पा न सकी। वह स्थूलि को कितना चाहती है कितना मानती है। उसने उसके लिए क्या नहीं किया? क्या नहीं त्यागा। किन्तु स्थूलिभद्र, उसे भी तो कितना ध्यान है साधुवेश में ही सही पर सुध तो ली। पर अब वह उसे इतनी सरलता से दूर नहीं होने देगी। वह अपनी समस्त शक्ति लगाकर भी उसे अपना बना कर रहेगी। इन्हीं विचारों में वह उलझी रही और न जाने कब तक उलझती रहती अगर निद्रादेवी अपनी शांत गोद में थपकी देकर न सुला देती।

स्थूलिभद्र को फंसाने के लिए कोशा ने अनेक प्रयत्न किये किन्तु बजाय उनको फंसाने के स्वयं ही उनकी ओर झुकती गई। उसके मोह का नशा उतर गया। अब उसे स्थूलिभद्र की आध्यात्मिक बातें अधिक पसन्द आने लगी। विलासिता का स्थान सादगी ने ले लिया। आभूषण उसको भार स्वरूप लगने लगे। कभी जिनको पहनकर वह फूली नहीं समाती थी। इस सादगी में उसका सौन्दर्य और अधिक निखर उठा। पर अब यह रूप उसके गर्व की वस्तु न थी। रूप का पारखी ही जब

मुँह मोडे हुए है तब उसे रूप का करना ही क्या है। पुरानी घटनाएं एक एक करके स्मरण हो उठीं। सोया संगीत जाग उठा। अगुंलियों ने सितार पर विरह की एक अपूर्व तान छेड़दी। स्थूलिभद्र के कानों में भी वह दर्द भरी स्वर लहरी पहुँची। स्थूलिभद्र एक क्षण तक किसी विचार में डूबे रहे फिर कुछ सोचकर कोशा की तरफ चल पड़े। ज्योंही कोशा की नजर स्थूलिभद्र पर पड़ी चौंक उठी। भय और आश्चर्य से उसकी अद्‌भुत अवस्था हो गई। मानों चोर रंगे हाथों पकड़ा गया हो। वह न हिल सकी न डुल सकी। उसकी गीली पलकें शर्म से झुक गई। वह इस अवस्था में स्थूलिभद्र के सामने होने के लिए तैयार न थी।

स्थूलिभद्र ने देखा कोशा बहुत ही सादे वस्त्र पहने हुए है। अंगों पर अलंकार नाम मात्र को नहीं। मुख म्लान है। शोक में डूबा हुआ। आंखों में बादसी उमड़ पड़ी है जिसे रोकने की वह विफल चेष्टा कर रही है।

स्थूलिभद्र ने पुकारा कोशा !

कोशा की भींगी पलकें ऊपर को उठ कर रह गई। मानों कह रही थी अब और क्या चाहते हो ?

स्थूलिभद्र ने फिर पुकारा—यह तुम्हारा क्या हाल हो रहा है कोशा। तुम इतनी दुखित क्यों हो रही हो ?

कोशा ने अपने को स्वस्थ करते हुए कहा-क्या सचमुच तुम्हें इससे दुख होता है ?

स्थूलिभद्र ने बड़े शांत स्वर में कहा—हां कोशा मुझे दुख होता है और बहुत अधिक। तुम्हें याद होगा एक समय तुम सारे नगर के लोगों के मनोरंजन का साधन थीं। सारा नगर तुम्हारे रूप की, तुम्हारी कला की प्रशंसा करता था। देश देश में तुम्हारी ख्याति थी। पैसे की तुम्हारे यहां वर्षा होती थी। किन्तु जब से मैं आया तुम मेरी होगई। केवल मेरी। किन्तु क्या यही जीवन था? यही उद्देश्य है जीवन का। तुम्हारा प्रेम मेरे तक ही मर्यादित रहे क्या यह ठीक है? यह ठीक है कि एक समय था जब मेरा प्रेम भी तुम्हारे तक ही बंधा हुआ था। इसके लिए मैंने घर-बार, माता पिता तथा समस्त परिवार को त्याग कर तुम्हारे यहां रहा। किन्तु फिर भी मुझे शांति नहीं मिली। वह प्रेम विशुद्ध प्रेम न था। वह सुख सच्चा सुख न था। जिसका अंत दुःखमय था। जिस ऐश्वर्य पर तुम्हें गुमान है, जिस विलासिता को तुम भोग रही हो, वह क्षणिक है। नाशवान है। बुझते दीपक की भांति। समस्त संसार के जीवों को अपने तुल्य समझो सबकी भलाई को अपनी भलाई समझो। मानव मात्र को अपने प्रेम और सेवा से जीता जा सकता है। अपने में मोह ममत्व को पहचानो। सूर्य की किरणें किसी एक के वश में नहीं। वे किसी एक के घर को प्रकाशित नहीं करतीं।

स्थूलिभद्र के वक्तव्य का असर कोशा पर बहुत गहरा पड़ा। कोशा की आंखे चमक उठीं। उसे ऐसा लगा मानो कोई चीज

उसके अन्दर विद्युत का सा असर कर रही है। उसने झुक कर स्थूलिभद्र के चरणों में अपना मस्तक टेक दिया। और कहा—प्रभो! आज आपने मुझे सही मार्ग दिखाया है। मैं आपके उपकार को जन्म भर न भूल सकूंगी। मेरा रोम रोम आपका आभारी है। किन्तु मैं एक गणिका हूं— समाज से पददलित पुरुषों का खिलौना। क्या आप मुझे, . . . कहते कहते कोश के कंठ अवरुद्ध हो गए।

हां हां कहो क्या कहना चाहती हो? धीरज बंधाते हुए स्थूलिभद्र बोले।

कोशा ने स्वस्थता प्राप्त कर कहा—क्या आप मुझे अपनी शिष्या बना सकेंगे?

स्थूलिभद्र के मुख पर एक दिव्य ज्योति चमक उठी। उन्होने मुसकरा कर कहा—अवश्य। कोई भी मनुष्य जन्म से या जाति से छोटा या बड़ा नहीं होता किन्तु कर्म से छोटा बड़ा होता है। यही मेरे प्रभु का संदेश है देवी।

कोशा गदगद होकर फिर स्थूलिभद्र के चरणों में गिर पड़ी। उसकी आंखों से हर्ष के आंसू बरस पड़े।

स्थूलिभद्र ने कहा—उठो कोशा, तुम धन्य हो। तुमने सही मार्ग को पहचाना। वीर प्रभु की शरण में मुक्ति अवश्य मिलेगी। मेरा यहां आना भी सफल हुआ।

× × × ×

अपना अपना चातुर्मास बिताकर तीनों साधु गुरुजी के पास लौट आये। सबने अपना अपना पूरा हाल सुनाया। अपने पर

आए उपसर्ग बताये । गुरुजी बहुत प्रसन्न हुए । सबकी प्रशंसा की । किन्तु स्थूलिभद्र अभीतक नहीं लौटे गुरुजी प्रतीक्षा कर रहे थे और अन्य साधु मजाक उड़ा रहे थे । सबके बीच एक ही चर्चा थी । सबका मत एक था—अब वह नहीं आयगा सुखों को छोड़ कर आही नहीं सकता । हम तो पहले ही से जानते थे । कोशा ने बारहवर्ष तक अटका के रक्खा । वह क्या उसे इतनी असानी से छोड़ेगी । वेश्या के यहाँ जब उसने अपना चतुर्मास चुना तब ही विचार स्पष्ट हो गए । साधुत्व क्या इतना सरल है । पर गुरुजी .. .. कि देखा स्थूलिभद्र प्रसन्न मुख चले आ रहे हैं । आकर विधि सहित गुरुदेव को नमस्कार किया फिर क्रमशः अन्य साधुओं को ।

गुरुदेव ने स्थूलिभद्र से कुशल क्षेम पूछी ।
स्थूलिभद्र ने सारा वृतान्त सुना दिया ।

गुरुजी की आंखें चमक उठीं । उन्होंने स्थूलिभद्र को अपने पास का आसन दिया ।

साधु जल उठे गुरुजी के इस पक्षपातपूर्ण व्यवहार से । इतने कठिन परिसह सहे, अनेक कष्ट उठाये उन्हें कुछ नहीं और एक वेश्या के यहां आराम से रहने वाले को इतना सम्मान !

पुनः चातुर्मास का समय आया । सबने चातुर्मास की आज्ञा मांगी । गुरुजी ने सबका विचार सुनकर आज्ञा देदी । अब केवल सिंह गुफा वासी साधु शेष रहे । इनके विचार को सुनकर गुरुजी विचार में पड़गए । वे बोले—साधु, किसी की देखा

देखी नहीं करनी चाहिये । साधु को ईर्षा शोभा नहीं देती । तुमने राग द्वेष पर विजय पाने के लिए घर बार छोड़ा है । विवेक से काम लो । किन्तु हठी साधु अपने विचार पर अटल रहा । उसने कहा—गुरुजी आपको यह पक्षपात नहीं करना चाहिये । आपके लिए तो सब समान हैं । हताश गुरुजी ने अनिच्छापूर्वक स्वीकृति देदी ।

× × × ×

कोशा और उसकी दासियां अब साधु समाज से अपरिचित न रही थीं । पहरेदार दासियों ने देखा स्थूलिभद्र की तरह के वस्त्र पहने एक साधु आरहे हैं । उन्होंने बिना कुछ पूछे ताछे हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए कहा—अंदर पधारिये महाराज ! साधु ने साश्चर्य चारों ओर देखा और एक दासी के पीछे होगए । दासी ने कोशा की तरफ इशारा करते हुए कहा--यही हैं हमारी मालकिन ।

कोशा ने साधु को देखते ही नमस्कार किया ।

साधु बोले—बहन ! मैं तुम्हारे यहां अपना चातुर्मास बिताना चाहता हूँ यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो ।

कोशा ने एक बार साधु को नीचे से ऊपर तक अच्छी तरह देखा । तत्काल ही उसके सामने मुनि स्थूलिभद्र की आकृति आगई । एक दिन वे भी इसी तरह इसी वेश में उसके यहाँ आए थे चातुर्मास बिताने के लिये । और वह खोगई इन्हीं विचारों के सागर में ।

साधु ने शांति भंग करते हुए कहा—क्यों बहन . . . .

उसे चेतना आई । अपने को संभालते हुए कहा--मेरे अहोभाग्य महाराज । आप सहर्ष अपना चातुर्मास यहां बितायें पधारिये मैं आपको भवन दिखा दूं । जहा भी आपको अनुकूल पड़े विराजे ।

साधु ने एक एकान्त स्थान को अपने रहने के लिए चुना । उन्होंने कोशा को अपनी कल्पना से बिलकुल भिन्न पाया । उन्होंने सोच रखा था कोशा के राजमहल से भवन में प्रवेश करते ही वे एक चंचल सुन्दरी को देखेंगे । जो बहुमूल्य जेवरों और वेशकीमती वस्त्रों से लदी होगी । पाटलिपुत्र की प्रसिद्ध गणिका की विलासिता, शानशौकत और कामबाणों से लोहा लेना होगा । पर इससे क्या भय है वह जंगल मे मौत के मुंह में रह आया है। उसके लिए यहां आनन्द में अपने संयम को निभाने मे है ही क्या । गुरूजी समझते हैं कि स्थूलिभद्र ही इस योग्य हैं किन्तु मैं उन्हे दिखा दूंगा कि मैं क्या हूँ । किन्तु यहां तो और ही कुछ देखा । न तो यहां वेश्याओं की सी कोई सजधज ही है और न कोई आडम्बर । कोशा की देह पर मामूली पोशाक है । अलंकार तो नाम को भी नहीं । कोशा कभी कभी अतिथि साधु के पास जाती थी । उनकी ज्ञान चर्चा और सदुपदेश को सुनने में कोशा को अलौकिक आनन्द मिलता था । किन्तु शनैः शनैः उसने साधु के वार्तालाप में व्यवहार में परिवर्तन देखा उन्हें अपनी ओर आकृष्ट

होते देखा तो उसको बहुत दुख हुआ। उसने साधु के पास आना जाना बन्द सा कर दिया।

ज्यों ज्यों दवा की, मर्ज बढ़ता ही गया। साधु की अजीब हालत होगई। अपना जप तप सब कुछ भूल गये। आंखें किसी को ढूंढती थीं। किसी के दर्शन के लिए उत्सुक थीं। कान द्वार की ओर लगे रहते। "कोशा, कोशा" की प्रतिध्वनि उसके रोम-रोम से निकलने लगी। समुद्र ऊपर से शांत दिखाई पड़ रहा था, उसके अन्दर बड़वानल जल रहा था। वह अब किसी तरह अपने को न रोक सका और स्वयं कोशा की तरफ चल पड़ा।

कोशा ने जब साधु को देखा तो चौंक पड़ी। आप इस समय रात को यहां क्यों आये हैं? उसने कठोरता से पूछा।

साधु छिटपिटा गया। किन्तु कुछ क्षण बाद ही बोले—बहुत दिनों से तुम्हारे दर्शन नहीं किये, कोशा।

इस अवस्था में भी कोशा का हंसी आगई। मैं दर्शन योग्य कबसे होगई एक साधु के लिए। किन्तु उसने वाक्य को दबा कर कहा--क्या स्त्री से मिलने का यही समय है?

तुम तो साधु को एक दम भूल गई कोशा किन्तु मैं तुम्हें हर घड़ी याद करता था। तुम तो सब कुछ जानती हो कोशा। मैं जल रहा हूं। मुझे मारना या जिलाना तुम्हारे हाथ में है। मेरी देवी! आज इस दास को अपनी पूजा करने दो!

कोशा पर तो मानों आसमान टूट पड़ा। इससे उसको

मार्मिक पीड़ा पहुंची। उसने सोचा एक स्थूलभद्र थे जिन्हें रिझाने के लिए मैंने भर सक प्रयत्न किया किन्तु सब व्यर्थ गया और मुझे स्वयं को सही मार्ग पर ले आए और एक ये हैं। इनकी बिगड़ी मनोवृति को देख कर इनसे मिलना जुलना तक बन्द कर दिया किन्तु इससे भी कोई लाभ नहीं हुआ। और आज स्वयं चले आए। मैंने अपना साज. शृंगार त्याग दिया किन्तु इस रूप का क्या करूं। भगवान् क्या स्त्रियों को इसीलिए रूप देते हो? अब मैं क्या करूं- इन्हें कैसे समझाऊँ इस समय जो कुछ भी कहूंगी इन्हें अरुचिकर होगा। व्यर्थ जायगा। उसे एक उपाय सूझा। उसने कहा—मुनि आप किस होश में हैं? आप तो जानते ही हैं कि मैं एक वेश्या हूं और वेश्याएं मुफ्त में किसी से बात भी नहीं करतीं।

मुनि विचार में पड़ गए। बोले तुम तो जानती हो कोशा कि मेरे पास कुछ भी नहीं है।

तो मैं मजबूर हू--कोशा ने लाचारी का भाव दर्शाते हुए कहा।

साधु ने अत्यन्त दीनता के स्वर में कहा--ऐसा न कहो कोशा। मेरा दिल न तोड़ो। मुझे रूखा उत्तर देकर निराश न करो। अब मैं तुम्हारे बिना जिन्दा नहीं रह सकता। इसके लिए मेरी जान तक हाजिर है। तुम जो कुछ कहो मैं करने को प्रस्तुत हूं।

जिसे अपने चरित्र और हिम्मत का इतना गुमान. था वही कोशा के चरणों में लुट रहा था।

कोशा ने कहा--अगर तुम्हारी यही इच्छा है तो यहां से दूर बहुत दूर नैपाल में वहां के महाराज साधुओं को रत्न कम्बल

प्रदान करते हैं अगर ला सको तो वही मेरे लिये ले आओ।

साधुने अत्यन्त प्रसन्न होते हुए कहा—बस इतनी सी बात। अवश्य जाऊँगा कम्बल लेने के लिए। तुम जो आज्ञा दो करने लिए तैयार हूं। इससे भी अधिक दुष्कर कार्य कहतीं तो भी तैयार था। आज ही प्रस्थान करता हूं। अब तो खुश हो ना ?

कोशा कुछ न बोली। दया की एक दृष्टि फेंक कर चली गई।

× × × ×

मार्ग के अनेक कष्ट सहता हुआ साधु आखिर नैपाल पहुँच ही गया। किसी तरह रत्न कम्बल ले साधु वापिस लौटा। उसकी खुशी का कोई ठिकाना न था। उसने आदर से वह अपनी भेंट कोशा को देते हुए कहा—लो कोशा ! मेरी यह तुच्छ भेंट स्वीकार करो।

कोशा की आंखे भर आईं। उसने सोचा—ओह मैं कितनी अभागिन हूँ जिसके लिए एक तपस्वी साधु अपना चरित्र भ्रष्ट करने को तैयार है। क्या मैं यही दिन देखने को पैदा हुई थी। धिक्कार है मेरे रूप यौवन को। सचमुच ईश्वर की सृष्टि में स्त्री एक अभिशाप है। पर तत्काल ही साधु पर दृष्टि जाते ही उसने बड़ी उपेक्षा के साथ ले लिया इस तरह जैसे उसके लिए उसका कुछ मूल्य ही नहीं।

साधु को कुछ बुरा लगा किन्तु फिर सोचा यह भी इसकी एक चाल है।

घंटे पर घंटे बित गए किन्तु कोशा नहीं आई। साधु से अब न रहा गया। महीनों की जुदाई उन्होंने सही किन्तु अब एक एक पल भारी हो गया। आखिर साधु स्वयं कोशा की तरफ चला। पैर बढ़ते ही नहीं थे एक एक इंच चल चल कर कोशा के पास पहुँचा। यह, यह कोशा है या कोई इन्द्र के अखाड़े की अप्सरा। ऐसा मोहक रूप तो उन्होंने आज तक नहीं देखा। दूध के झागों के समान सफेद पोशाक पहने हुए सुराहीदार गरदन और उभरे हुए वक्षस्थल पर मुक्ता-मणियों की माला चम-चम करके चमक रही थी। पैरों में महावर लगा हुआ और सोने की पायजेबें पहने थी। अंग अंग से सौन्दर्य फूट रहा था। साधू बावला सा होगया। साधु एकटक उसकी ओर देख रहा था। किन्तु एकाएक साधु का चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। उसकी इतनी मेहनत से लाई हुई वेश कीमती रत्न कम्बल का यह उपयोग कि उससे पैर पोंछे जांय उसे पैर से कुचला जाय। उसने क्रोध के साथ कहा—पाटली की प्रसिद्ध गणिका को मैं इतनी मूर्ख नहीं समझता था इससे अधिक मूर्खता और क्या हो सकती है कि एक बहुमूल्य रत्न कम्बल से पैर पोंछे जाय! जानती हो! इसे प्राप्त करने में मुझे कितनी मुसीबतें उठानी पड़ीं? कितनी नदियां और पर्वत पार करने पड़े। वर्षा और घाम में चला। झूठ बोला, अनेक छल

प्रपंच रचे और तब इसे प्राप्त कर सका। जिसका तुम यह उपयोग कर रही हो।

कोशा अन्दर ही अन्दर मुसकराई। कृत्रिम रोष दिखाते हुए कहा- साधु इसमें इतने बिगड़ने की क्या बात है। अगर अनेक वर्षों का अनुभवी तपस्वी साधु अपने उत्कृष्ट चरित्र को इस तरह एक औरत के पैरों तले डाल सकता है तो उन्हीं पवित्र चरणों को इस नगण्य कम्बल से पोंछ लिया तो इसमें मूर्खता क्या हुई ?

बात साधु को लग गई। उसने विचार किया। उसे भान होने लगा, मैं एक साधु हूँ और यहाँ अपने चरित्र को कसौटी पर कसने आया था। उसका मुँहा लज्जा से झुक गया। पृथ्वी घूमती सी अनुभव हुई। गुरुजी के उन शब्दो की सचाई स्पष्ट हो गई। साधु को ईर्षा नहीं करनी चाहिये। किसी की बरा बरी नहीं करनी चाहिये। अभी तक वह इस योग्य नहीं कि एक वेश्या के यहा अपना चातुर्मास बिताये। भगवान् महावीर को भी जब देव दुखों से विचलित न कर सके तब उन्होंने अनुकूल उपसर्ग देने प्रारम्भ किये। मनुष्य कष्ट को सहन कर सकता है, अपना भान रह सकता है किन्तु अनुकूल परिस्थिति में बिरला ही अपने को बचा सकता है। तुमने सिंह की गुफा के भयंकर कष्टों को जीत लिया किन्तु इस सुख में तुम अपने को संयत रख सकोगे इसमें मुझे संदेह है। टूटे हुए हाथ पैर वाली और कटे हुए कान नाक वाली सौ वर्ष की बुढ़िया का संग भी

ब्रह्मचारी के लिए ठीक नहीं किन्तु यह सब बातें उस समय अच्छी नहीं लगीं। जिसका सिर्फ वेश्यारूप ही सोचा सचमुच वह बड़ी उपकारिणी और सती स्त्री निकली। अगर यह न बचा लेती तो कहीं का न रहता।

साधु बोले–बहन ! मुझे क्षमा करो। काम ने मुझे अंधा बना दिया था। मुझे अपना कुछ भी भान न रहा। तुमने मुझे नारकीय जीवन से बचा लिया। गुरूजी ने मना किया। किन्तु उस समय तो मेरे पर यह भूत सवार था कि गुरुदेव स्थूलिभद्र का पक्ष ले रहे हैं। मैं महापापी हूँ। मैंने तुम जैसी देवी को कष्ट दिया। मुझे क्षमा करदो। साधु की वाणी में पश्चाताप और वेदना थी।

कोशा की आंखों से टपटप आंसू गिरने लगे। उसने कहा–यह आप क्या कह रहे हैं कष्ट तो मैने आपको दिया, मैं ही अभागिन हूं। मेरे ही कारण आप सरीखे तपस्वी को इतना कष्ट सहना पड़ा। मैंने आपकी बड़ी अशातना की है, आप मुझे क्षमा करें।

इतने ही में दोनो ने स्थूलिभद्र को आते देखा। स्थूलिभद्र गुरु की आज्ञा से वहां पहुँचे थे। स्थूलिभद्र को देखते ही साधु उनके चरणों में गिर पड़े और कहा—आप धन्य हैं। मैंने अज्ञान में आप जैसे महान् तपस्वी का अनादर किया। आप मुझे क्षमा करें।

स्थूलिभद्र ने साधु को उठाते हुए कहा—यह आप क्या कर

रहे हैं अवस्था में, ? ज्ञान में, दीक्षा में आप मुझसे बड़े हैं। आपके चरणों को स्पर्श करने का अधिकारी तो मैं हूँ।

धन्य है स्थूलिभद्र तुम्हें और तुम्हारे शील को। इसीलिए आज भी साहूकार लोग अपनी बहियों में 'स्थूलिभद्र तणो शील' लिखकर हर दीवाली में तुम्हें स्मरण कर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। तुम धन्य हो।

★

प्रतिबोध

ध्यानी मौन और निश्चल मूर्ति-सा जड़वत पगडंडी से दूर खड़ा था। उसका वर्ण श्याम था या गौर यह कौन बता सकता था। शरीर पर जगह जगह बेलें छा गई थी। चिड़ियों ने भी अपने छोटे छोटे नीड़ बना दिए। पक्षी निर्भीक होकर उनमें रहते थे। उनकी चहल पहल, निर्भीकता से गुजरना ध्यानी को कुछ भी बाधा नहीं पहुँचाते थे। अलमस्त ध्यानी स्थिर दृष्टि किए अपने ध्यान में मस्त था। उसे इस दीन दुनियां की कुछ भी खबर नहीं थी। कुछ भी वास्ता नहीं था। वसंत खिल रहा है या पतझड़ झड़ रही है इन सबका व्योरा उसके पास न था। कितने दिन पक्ष मास बीत गए पर इसकी सुध उसे न थी। उसे अपनी साधना से मतलब था जिसके लिए सुन्दर बलिष्ठ शरीर को सुखाकर कांटा बना दिया। पर इससे वह विचलित न हुआ। वह मानों इस दुनियां से परे कहीं विचर रहा था। उसे दुनियां की कालगति का कुछ भी भान न था। उसे तो केवल अपने लक्ष्य का ध्यान था जिसके लिए वह इस निविड़ निजन बन में ध्यानस्थ खड़ा था। किन्तु इतना सब होते हुए भी उसे केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं हो रही थी। अवश्य कुछ रहस्य था।

× × × ×

एक दिन महाप्रभु ऋषभदेव ने महासाध्वियों ब्राह्मी और सुंदरी को बुलाया जो संसारिक जीवन में उनकी पुत्रियां थीं।

महा साध्वियों ब्राह्मी और सुन्दरी ने वंदन करके कहा—'प्रभो! आदेश।'

प्रभु ने अपनी मद मुसकराहट चारों ओर फैलाते हुए कहा—जानती हो साध्वियो! मैंने तुम्हें क्यों बुलाया है?

दोनों ने हाथ जोडकर बड़े विनीत भाव से कहा—नहीं प्रभो!

प्रभु बोले—आज मैंने तुम्हें तुम्हारे संसारिक भाई महान तपस्वी योगीराज बाहुबली को प्रतिबोध देने के लिए बुलाया है?

प्रतिबोध देने! दोनों साध्वियां चमकीं। उन्होंने कहा—प्रभो हमारी क्या क्षमता है कि हम प्रतिबोध देंगी। एक दिन आपने तो फरमाया था कि वे भयंकर बन मे उत्कृष्ट तपस्या कर रहे हैं। अपनी सुकुमार देह को सुखाकर कांटा बना दिया है। उन्हें हम क्या प्रतिबोध देंगी प्रभो!

प्रभु बोले—हां यह यथार्थ है। वे अब भी उसी प्रकार उग्र तपस्या में लीन हैं। दिन रात एक कर दिया है। किन्तु इतनी उग्र तपस्या करने पर भी उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं हो रही है।

उत्सुक साध्वियां बोलीं—यह क्यों प्रभो!

प्रभु बोले—सुनो जब भरत के साथ बाहुबली का घमासान हो रहा था उस समय जब सब उपायों से भरत हार गया तब उसने क्रोध के वश शर्त विरुद्ध चक्र का उपयोग किया। इस बार भी भरत को मुंह की खानी पड़ी। इस अन्याय को देख-

कर बाहुबली का भी खून खौल उठा। उसने ज्योंही प्रतिकार स्वरूप भरत पर हाथ उठाया कि अन्तर से पुकार उठी—बड़े भ्राता पर हाथ उठाना अनुचित ही नहीं पाप है। जिस राज्य को तुम्हारे पिता तथा बन्धु तृणवत समझकर त्याग गये हैं उसीके लिए इतना निकृष्ट कार्य! उसने तत्काल युद्ध बंद कर दिया और अपने उठाए हुए हाथ से पंचमुष्टि लुंचन करके मेरे पास आने के लिए बढ़ा किन्तु फिर विचार आया कि मेरे पास आने से उसे नियमानुसार उम्र मे छोटे किन्तु दीक्षा में बड़े भाइयों को भी वंदन करना पड़ेगा। वह वहीं से ज्ञान प्राप्ति के लिए तपस्या करने चला गया। इसी अभिमान के कारण बाहुबली को इतनी उग्र तपस्या करने पर भी केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं हो रही है। अतः हे साध्वियो! तुम जाओ और उसे प्रतिबोध दो।

× × ×

बहुत खोज के बाद साध्वियों ने बाहुबली को पाया। जो दूर से एक ठूंठ की तरह खड़े दिख रहे थे। सारा शरीर पक्षियों का निवासस्थान बन गया था। सूर्यदेव अपने प्रचंड तेज के साथ तप रहे थे। गर्म वायु सांय सांय चल रही थी किन्तु साधु अचल था, अडिग था अपनी तपस्या में मस्त। इनकी घोर तपस्या को देख कर वे दंग रह गई। एक अभिमान के कारण यह घोर तपस्या निष्फल जा रही है। हठात उनके मुंह से निकल पड़ा—

पोरा माहारा गज थकी हेठा ऊतरो

गज चढ़या केवल न होसी रे।

बाहुबली की विचार-धारा को ठेस लगी। वे सोचने लगे—यह मीठी आवाज़ किधर से आई? अवश्य इसमें कुछ तथ्य है, रहस्य है। फिर एक बार वह ध्वनि प्रतिध्वनित हो उठी। ये क्या कह रही है, मैं तो किसी हाथी पर चढ़ा हुआ नहीं हूं कि नीचे उतरूं किन्तु श्रमणियां तो झूठ नहीं बोलतीं। सोचते सोचते विचार आया—ओह! ये सच कहती हैं। मैं अभिमान रूपी हाथी पर चढ़ा हुआ हूं। मुझे अपने बड़प्पन का अभिमान है। संसार का त्याग कर भी मैं अभिमान को न त्याग सका। इसी कारण सत्य मुझ से दूर दूर दौड़ता है। इसी कारण प्रभु की शरण में न जा सका। कितनी बड़ी भूल हो गई मुझ से। ज्यों ही वे पश्चाताप के साथ एक डग आगे बढ़े कि शीघ्र जाकर अपने भाइयों से क्षमा मांगे ध्यानी कर्मो का क्षय होकर उन्हें केवल ज्ञान की प्राप्ति हो गई। आकाश से पुष्प वृष्टि हुई। योगिराज बाहुबली फूलों से ढक गये। लोगों ने सहस्रों की संख्या में आकर योगिराज के दर्शन किये। तप सिद्धि की इस अपूर्व छटा को मूर्तिकारों ने एक विशाल प्रतिमा में व्यक्त किया। योगिराज बाहुबली की वही विशाल प्रतिमा आज सालम बलगोड़ा के प्रसिद्ध तीर्थ में स्थापित है और अपने आकार के कारण दर्शकों के हृदय को महानता के सन्मुख अवनत करती है।

★

मिलन

राजकुमार पवन अपनी आयुधशाला में बैठे नाना प्रकार के हथियारों की परीक्षा कर रहे थे। इस छोटी सी उम्र मे उन्होंने हथियारों में कई सुधार किये। प्रयोग के अनेक नये ढग खोज निकाले। बड़े बड़े योद्धाओं को उन पर श्रद्धा थी। उनका अधिक समय इसी आयुधशाला मे बीतता था। किन्तु आज रह रहकर उनकी दृष्टि द्वार पर चली जाती थी। उनका बाल मित्र प्रहस्त आज अब तक क्यों नहीं आया यही विचार उन्हें अशान्त बना रहा था। रात दिन सोना उठना सब एक ही साथ होता था। प्रहस्त थोड़ी देर के लिए भी अपने घर चला जाता तो राजकुमार स्वयं उसके घर पहुंच जाते। किन्तु जब से प्रहस्त का विवाह होगया तबसे पवन का बड़ी मुश्किल हो गई। उसे स्मरण हो उठा–जब प्रहस्त अपने घर जाने लगा तब पवन ने किसी तरह उसे अपने से अलग न होने देना चाहा। महाराज ने आकर समझाया- कुमार इसे घर जाने दो। तुम भी शीघ्र व्याह दिये जाओगे तब अकेले न रहोगे। कुमार को यह अच्छा न लगा पर देखा अन्य कोई उपाय भी नहीं।

प्रहस्त ने मुसकराते हुए प्रवेश किया। राजकुमार से प्रहस्त का आना छिपा न रहा फिर भी वे चुप रहे। उन्हें गुस्सा तो

इस बात का था कि वह इतनी देर तक घर रहा तो क्यों ?

प्रहस्त ने एक आव शस्त्र को इधर उधर हटा कर कहा— देखता हूं कुमार बहुत नाराज है किन्तु मैं तो एक बहुत अच्छी खुशखबरी लाया था।

कुमार ने प्रहस्त की तरफ बिना देखे ही कहा—देखता हूँ जब से भाभी आई हैं रात के अलावा अब दिन को भी गायब रहने लगे हो ?

तो उसका दंड मुझे क्यों मिले। पर अब तो मुझे शक है कहीं यही बात मुझे ही न कहनी पड़े—मंत्री पुत्र ने मंद मंद मुसकराते हुए कहा।

उन्होंने घूमकर कहा—क्या मतलब ?

यही कि जो उलाहना आपने मुझे दिया है कहीं मुझे भी न देना पड़े। किन्तु खैर अभी तो मैं एक बहुत अच्छी खबर लाया था।

कुमार ने गंभीर बनते हुए कहा—किन्तु मैंने सुनाने के लिए मना नहीं कर रखा है।

किन्तु हां भी नहीं कहा। फिर जब तक उसके योग्य उपहार की घोषणा नहीं हो जाती तब तक वह सुनाई भी नहीं जा सकती।

कुमार हंस पड़े। हां यह बात पते की कही। पहले सुनाओ उपहार भी उसी हिसाब से मिल जायगा।

भारत की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी और महेन्द्रपुर की लाड़ली राज कुमारी को हमारी भाभी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

प्रहस्त की हँसी रुकती ही न थी।

कुमार का हृदय नाच उठा। उन्होंने हंसी को दबाते हुए कहा—यहां से महेन्द्रपुर कितनी दूर होगा ?

क्यों क्या राजकुमारी को अभी से देखने के लिए जी मचल उठा। हंसी प्रहस्त के चहरे पर अठखेलियां कर रही थी।

हां मित्र, पर यह कैसे संभव हो सकता है ? कुमार के स्वर में निराशा झलक रही थी।

यह मुझ पर छोड़ दीजिये। यह मेरा काम है। कल ही महाराज से सैर करने की आज्ञा लेकर गुप्त रूप से महेन्द्रपुर के लिए प्रस्थान कर देंगे। आपका क्या ख्याल है ?

पवन ने प्रहस्त की पीठ ठोकते हुए कहा—शाबाश। इसीलिए तो महाराज ने तुम्हें मेरे मंत्रीत्वका पद दिया है। तब इसके लिये मुझ ···· ··

प्रहस्त बीच ही में बोला--आप निश्चित रहें मैं सब कर लूंगा।

× × × ×

अगर इसी तरह हम सारा समय शहर देखने में ही में बिता देंगे तो राजकुमारी को देखना कठिन हो जायगा क्योंकि उनका वही समय वाटिका विहार का है। आदित्यपुर भी लौटना आवश्यक है।

हां चलो। पर देखते हो नगर की बनावट कितनी सुन्दर है। इतना स्वच्छ कलापूर्ण शहर अभी तक मेरे देखने में नहीं

आया। जिसमें यहां की लम्बी चौड़ी सड़कें किनारे पर की वृक्षों की कतार तो और भी भली लगती है।

प्रहस्त ने भेद भरी मुसकराहट के साथ कहा—और थोड़ी देर में आप यह भी कहते सुने जायेंगे कि इतनी सुन्दर राजकुमारी भी मैंने आज तक नहीं देखी।

अच्छा अब आप पधारिये, पवन ने मुसकराते हुए कहा। यही तो राजकुमारी की विहारबाटिका दिखती है। देखिये न कितने कलापूर्ण ढंग से फूलों द्वारा श्री अजना-विहार-कुञ्ज लिखा हुआ है। पर सावधान इन पहरेदारों से बचियेगा वरना कहीं इसी समय राजकुमारी के समक्ष मुलजिम होकर उपस्थित न होना पड़े।

अब शांत भी रहो। नूपुरों की मधुर झंकार भी सुन रहे हो? चलो पीछे की तरफ से चल कर देखें क्या रंग खिल रहा है। दोनों एक लता कुञ्ज की ओट में खड़े होकर देखने लगे।

वह देखिये उस फूलोंवाले हिंडोले पर जो सुन्दरी झूले खा रही है वही राजकुमारी अंजना प्रतीत होती है।

उधर सुनो वह सुंदरी क्या कह रही है?

अंजना की प्रिय सखी बसन्त लता बोली—उफ आज तो बड़ी भयकर गर्मी है। इस बाटिका में भी दम घुट रहा है।

चम्पा ने कहा—किन्तु हमारी राजकुमारी को अब गर्मी नहीं लगती। उनकी आंखों में शरारत खेल रही थी।

राधाने मुँह मटकाकर कहा—क्यों भला ?

चम्पा ने आश्चर्य प्रगट करते हुए कहा—अरे तू नहीं जानती, अब हमारी राजकुमारी को इस कृत्रिम पवन की आवश्यकता नहीं। अब तो एक दूसरा ही पवन हृदय मन्दिर मे बस चुका है हमारी राजकुमारी के।

किन्तु हमने तो सुना था कि हमारी राजकुमारी राजकुमार विद्युत्पर्ण के गले का हार बनेगी—मिश्रकशी बोली।

तू किस दुनियां मे रहती है। तू यह भी नहीं जानती कि ज्योतिषी महाराज के कारण वह सम्बन्ध रुक गया। क्यों कि उनके कथनानुसार कुमार की उम्र बहुत ही अल्प है और उनके शास्त्र के अनुसार छोटी उम्र में ही कुमार के जोगी बनने का जोग है। भला हमारी राजकुमारी को जोग थोड़े ही रमाना है। क्यों राजकुमारीजी, चम्पा ने हंसी को दबाते हुए पूछा। अंजना ने झूमते हुए कहा—धन्य है उस राजकुमार को जो छोटी सी उम्र में ही साधुत्व ग्रहण करेंगे। इतने भाग्य मेरे कहां कि ......

पवन इतना सुनते ही आग बगूला होगए। उनका तेजस्वी मुख क्रोध से लाल हो गया। उन्होंने कहा—सुनते हो प्रहस्त इनकी बातें। चलो शीघ्र चलो, अब मैं यहां एक क्षण भी ठहरना नहीं चाहता। मेरा दम घुट रहा है। ऊपर से जितनी उजली दिखती है अन्दर से उतनी ही श्याम है। मुझे ऐसी आशा न थी।

मंत्रीपुत्र प्रहस्त घबड़ा सा गया। उसने अपने को स्वस्थ करते हुए कहा—राजकुमार ! ऐसा न कहिये। राजकुमारी के प्रति आपका यह विचार उचित नहीं। आप कहें तो मैं कुछ दिन यहीं ठहर जाऊँ और

नहीं, उत्तेजित पवन बोले—इसकी कोई आवश्यकता नहीं।

प्रहस्त ने कुछ हिम्मत के साथ कहा—जरा सोच समझ कर किसी प्रकार का निर्णय कीजिये। संभव है ·······

पवन—जानता हू। चलो—यहाँ से जितनी जल्दी हो सके। मेरा दम घुट रहा है। कुमार के हृदय मे प्रतिशोध की भावना प्रबल हो उठी।

× × × ×

कुमार यदि आज्ञा दें तो आज की रात बिताने के लिये पड़ाव यहीं पर डाल दिया जाय। मंत्रीपुत्र प्रहस्त ने अपने नये सेनापति पद की जिम्मेवारी समझते हुए कहा।

राजकुमार पवन कुछ गंभीर होकर बोले—अभी से ही थकावट महसूस करने लगे। हमें बहुत जल्दी पहुचना है। पड़ाव आगे डालना ही ठीक रहेगा।

किन्तु इधर नजदीक इतना अच्छा स्थान नहीं मिलेगा। मानसरोवर का रमणीय तट और फिर सूर्य भी डूबने वाला है।

हां ठीक है यहीं पर पड़ाव डाल दो। पवन ने कुछ सोच कर कहा।

मंत्रीपुत्र से यह छिपा न रहा कि कुमार किस चिन्ता में व्यस्त हैं। उसने कहा—कुमार आज मैं आपको बहुत उदास और चिन्तित देख रहा हूं। क्या भाभी का वियोग . ...

बीच काट कर कुमार बोले—क्यों जलाते हो। तुम तो जानते ही हो कि आज शादी हुए एक दो नहीं किन्तु बारह वर्ष हो गये हैं। किन्तु मैंने आंख उठा कर भी उस तरफ नहीं देखा। उसके सम्बन्ध में सोचना भी पाप समझता हूँ। अच्छा अब तुम जाओ आराम करो। हमें भी आराम की जरुरत है। कहने को तो पवन कह गये पर उनकी आँखों में नींद कहाँ। जिन विचारों से वर्षों दूर भागते रहे आज युद्धस्थल में जाते समय वे ही विचार सताने लगे। जिसके विषय में सोचना भी पाप समझते थे आज उसी का मूर्ति आंखों मे तैर रही थी। अनेक विचार आये, अनेक दृश्य सजीव हो उठे। वे सोचने लगे जब उन्हे उस राजकुमारी पर शक था तब उन्होंने उसके साथ शादी ही क्यों की ? क्यों न इन्कार कर दिया। क्या यह दंड देना उसे उचित था ? शक मात्र से क्या उसे छोड़ देना उसके लिए ठीक था ? क्या कभी इसका सफाई मांगी ? कुमार बिस्तर पर से उठकर बाहर आए, देखा सारी दुनिया सो रही है। चांदनी रात थी। कुमार निकल पड़े। वे अपने खेमे से कितनी दूर आगए इसका हिसाब उनके पास न था। वे तो विचारों की दुनिया में खोए से संज्ञाहीन चले जा रहे थे कि उन्हें एक करुण आर्तस्वर सुनाई दिया। कुमार चौंके, उनकी विचार धारा को ठेस लगी। इधर उधर देखा एक चकवी छटपटा रही है। आंखें सजल है, कंठ से करुण

पुकार आ रही है पंख फड़फड़ा रहे हैं मानो वियोग की आग से वह जल रही है। उसको यह दशा देखकर कुमार का हृदय द्रवित हो गया। उनकी आंखों से सहानुभूति के दो आंसू टपक पड़े। हठात् कुमार बोल उठे चकवी! विरहिणी चकवी! एक ही रात में तुम्हारा यह हाल है तो मेरी चकवी का जो एक मानवी है क्या हाल होता होगा। एक दो रात नहीं बारह २ वर्ष बीत गये विरहाग्नि में जलते। सिर्फ अपने मन के खातिर पुरुषत्व के बड़प्पन में मैंने उसे त्याग दी। उसे मन का हाल कहता सफाई मांगता। वर्षों की बुझी आग एकाएक भड़क उठी। कुमार ने किस तरह इतना समय बिता दिया था कि तु अब एक क्षण का विलम्ब भी असह्य होने लगा। पवन को अपना व्यवहार बिच्छू के डंक की तरह काटने लगा। अपनी मान मर्यादा सब कुछ त्याग कर युद्ध में जाने वाले पति का मंगल मनाने आई थी किन्तु इस पर भी उसने वे श्रद्धा के फूल भी ठोकर से ठुकरा दिये। फिर भी वह बोली–मुझे तो चरणरज ही मिलती रहे तो मैं सन्तुष्ट हूं। मुझे इससे अधिक और कुछ नहीं चाहिए। सोचते २ कुमार को अपने ही से घृणा होने लगी। उनका हृदय अपनी प्राणप्रिया से क्षमा मांगने के लिए व्यग्र हो उठा। उसी समय प्रहस्त को बुलाया।

अब और नहीं सहा जाता प्रहस्त। मैंने उसके प्रति घोर अन्याय किया है। जब तक इसका मैं प्रायश्चित्त नहीं कर लेता, उस देवी से क्षमा प्राप्त नहीं कर लेता तब तक मुझे चैन नहीं मिल सकता प्रहस्त मुझे अब युद्ध, विजय कुछ नहीं चाहिये। कोई ऐसा उपाय करो कि मैं और अधिक न जलूँ। अब इस पाप का बोझ मैं और अधिक

नहीं हो सकता। कहते २ कुमार की आँखों में आसू भर आए, कंठ अवरुद्ध हो गया।

प्रहस्त ने धीरज बधाते हुए कहा इतने उद्विग्न न होइये कुमार ! चलिये अभी हम चल चलते हैं।

लेकिन प्रहस्त ! यह कैसे हो सकता है मैं पिताजी का क्या मुँह दिखाऊंगा ? लोग क्या कहेंगे ? कुमार युद्ध से घर कर प्रस्थान किए हुए वापिस लौट आए कुमार ने निराशा के स्वर में कहा।

आप इसकी चिन्ता न करें। मैं सूर्योदय से पहले ही वापिस यहाँ लौट आऊँगा। आप वहां गुप्त रूप से दो एक दिन रह कर वापिस पधार जाय तब तक मैं आपका प्रतीक्षा करूँगा।

पवन ने अपने बाल्य बन्धु को गले लगाते हुए कहा शाबाश प्रहस्त ! तुम कितने अच्छे हो।

कुमार और प्रहस्त के हवाई घोड़ों ने महल के निकट आकर ही दम लिया। घोडे की पीठ थपथपा कर प्रहस्त महल के पीछे के द्वार की तरफ गये। रात काफी हो गई थी। चारों तरफ नीरवता छाई हुई थी। कभी कभी हवा से हिलने पर पत्तों की खडखडाहट सुनाई देती थी। प्रहस्त ने धीरे से किन्तु स्पष्ट आवाज से पुकारा– वसतमाला ! वसतमाला ! द्वार खोलो।

वसतमाला चौंकी इतनी रात गये यह किसकी आवाज है उसे किसने पुकारा। उसका हृदय जोर जोर से धड़कने लगा। भावी आशंका से उसका शरीर कांपने लगा। इस आधी रात में युवराज्ञी

अंजना के महल में आने का साहस किसने किया ? क्या सब प्रति-हारी सो गए। कि इतने में फिर वही पुकार सुनाई दी। किसी तरह साहस बटोर कर एक एक इंच बढ़ती हुई खिड़की के पास आई और छिद्रों में से देखा–कुमार के अंतरंग मित्र प्रहस्त को। फिर सोच में डूब गई प्रहस्त यहां कैसे आए ? वे तो कुमार के साथ युद्ध में गये हैं। आवाज फिर आई डरो मत वसंतमाला ! पहले शीघ्र द्वार खोलो।

वसंतमाला ने द्वार खोलते ही प्रश्नों की झड़ी लगा दी– आप अभी इस समय अकेले ? आप तो रणभूमि ········

हां वसतमाला मैं कुमार के साथ आया हूं। कुमार युवराज्ञी से मिलने पधारे हैं, तुम विलम्ब न करो, देवी को यह शुभ समाचार शीघ्र सूचित करो।

वसंतमाला ने आश्चर्य के साथ कहा–क्या कहा आपने कुमार पधारे हैं। ऐसे भाग्य कहाँ। मुझे ·····

प्रहस्त ने कुछ खीजने के स्वर में कहा—कह तो दिया यह प्रश्नोत्तर का समय नहीं। तुम शीघ्र जाकर देवी को सूचित करो। कुमार अभी इसी समय मिलना चाहते हैं।

वसंतमाला की खुशी का पारावार न रहा। जल्दी जल्दी जाकर अंजना को जगाया। उठिये राजकुमारी यह सोने का समय नहीं।

अंजना को अभी बड़ी मुश्किल से नींद आई थी। उसने हड़बड़ा कर क्रोध के स्वर में कहा—क्या है ?

आप उठिये तो सही। कुमार पधारे हैं।

अंजना ने साश्चर्य कहा—पागल तो नहीं होगई वसन्तमाला ! यह तुम्हें इस समय क्या सूझी है वे यहां हैं कहां ? वे युद्ध भूमि में कहीं व्यूहरचना का आयोजन कर रहे होंगे।

लो देखो, वे सामने ही आ रहे हैं न !

अंजना ने देखा। उसका हृदय उछला। शरीर में कंप आया। वर्षों की आशा पूरी होने का अचानक सुयोग। वह सह न सकी। उसकी देह का भान भूल गया। वह अचेत सी गिरी। वसतमाला ने दौड़ कर उसे सहारा दिया।

कुमार अपनी सुन्दरी प्रिया से मिलने आये थे। नूपुर और मंजीरों की झंकार सुनने को कातर उनके कान सज्जित सौंदर्य को निहारने को व्यग्र उनकी आंखों में निराशा छा गई। उन्होंने एक तपस्विनी क्षीणवदना को वसतमाला की गोद में देखा।

वसंतमाला ने कहा-स्वामिन् आपके वियोग ने स्वामिनी का यह हाल कर दिया है।

अंजना—वह सोच रही थी कहीं वह स्वप्न तो नहीं देख रही है ! उसकी स्थिति विचित्र सी हो रही थी। उसका ज्ञान लुप्त सा होगया। वर्षों बाद उसके प्रियतम को दया आई। दया नहीं तो क्या पुरुष के समक्ष नारी का अस्तित्व ही क्या है। उसे अधिकार ही कितना है। किन्तु अंजना का महान् हृदय अधिकार के लिए नहीं छटपटा रहा था। वह तो सोच रही थी पति के चरण पकड़ कर क्षमा मांग ले और कह दे प्राणनाथ ! अब मैं इन

पावन चरणों को नहीं छोड़ूंगी। इसे हृदय में नहीं इन चरणों में ही स्थान दे दो। आगे बढ़े इससे पहले ही फिर मूर्च्छित हो गिर पड़ी।

अंजना की आंखें खुली तब उसने देखा उसका मस्तक पवन की जांघों पर पड़ा है और उसके रेशमी काले बालों में किसी की उलझी अंगुलियां चल रही हैं। कितने सुखमय क्षण हैं। इसी अवस्था में वह सोजाय सदा के लिए। इस निरापद स्थान में उसे कोई चिन्ता नहीं कोई भय नहीं। उसने अधखुली आंखों से जी भरकर अपने जीवन को देखा। यह विचार आते ही कि कहीं आंख खुलते ही उसका यह सुखद स्वर्गीय आनन्द लुप्त न हो जाय उसने जोर से अपने नयन मूंद लिये।

कुमार ने अत्यन्त मृदुल स्वर में कहा—अंजना मेरी अंजना, मुझे क्षमा कर दो। मैं बहुत लज्जित हूं मैं दुखी हूं।

अंजना गदगद होगई। वह रुद्ध कंठ से बोली—ऐसा न कहो प्रभु। इस अपराधिनी ने आपको कम कष्ट नहीं दिए। आज मेरे अहोभाग्य हैं कि आपकी चरणरज दासी की इस कुटिया में पड़ी। मैं किस मुंह से अपने अपराधों की क्षमा मांगूं।

पवन ने पश्चात्ताप के स्वर में कहा— प्रिये! मुझे और अधिक शर्मिंदा न करो। मैंने तुमसी सती स्त्री को ठुकराया इतने दिनों आंख रहते हुए भी मैं न देख सका। आज भाग्य से एक पक्षी ने मेरी आंखें खोल दी। किन्तु प्रिये तुमने यह नहीं पूछा कि मैंने

तुम्हें क्यों त्यागा ? तुमने ऐसा कौनसा अपराध किया जिसका इतना बड़ा दंड तुम्हें मिला ।

अंजना ने कहा—मुझे कुछ नहीं पूछना है । नहीं आपसे कोई शिकायत है । मैं तो सिर्फ यही चाहती हूं कि इसी तरह आपकी चरणचेरी बनी रहूं ।

पवन ने सोचा—अहो ! इसका हृदय कितना महान है । उस समय भी इसने इसी महानता का परिचय दिया । मेरे कितने ओछे विचार थे । मैंने कितनी बड़ी भूल कर डाली । वे बोल उठे तुम साक्षात देवी हो अंजना । तुम धन्य हो । पवन ने आज तक विजय ही प्राप्त की है । उसने किसी से हार नहीं खाई किन्तु आज हार कर भी गर्व अनुभव हो रहा है । इस पराजय में भी विजय पताका दिख रही है ।

इस तरह सुन्दरी की तपस्या सफल हुई । उसके अदम्य धैर्य और त्याग ने उसे सतियों की पंक्ति में बिठा दिया । हनुमान जैसे वीर रत्न पैदा कर उसने युग युग के लिए भारत को अपना ऋणी बना लिया ।

★

अमृत वर्षा

एक साधु अपनी धुन में मस्त एक घन घोर जंगल की ओर बढ़ा चला जा रहा था। कोसों तक जिस वन में हरियाली और वृक्षों का नाम नहीं था। पक्षियों की चहल पहल से शून्य। किन्तु साधु का ध्यान इन सब बातों की तरफ नहीं था। उसका ध्यान था केवल अपने लक्ष्य की ओर। कुछ लड़कों ने उसे देख लिया। देखते ही उन में से एक चिल्लाया अरे बेचारे को पता नहीं इसी लिए वह उधर जा रहा है जिस तरफ सर्प रहता है। बेचारा मुफ्त में बेमौत मारा जायगा। हमें उसे बचाना चाहिये। सब लड़के दौड़ कर उसके मार्ग को रोक कर खड़े होगए। उनमें से एक ने कहा—क्यों साधु महाराज, क्या मरने की ठानी है?

मुस्कराते हुए साधु ने कहा—नहीं बच्चो! मरना कोई पसन्द नहीं करता। पर तुम लोग मेरा रास्ता रोक कर क्यों खड़े हो गए?

यह रास्ता ठीक नहीं है महाराज! इस रास्ते की तरफ भूल कर पैर न बढ़ाए। वह रास्ता बहुत भयंकर है। सैकड़ों मनुष्य, जो इस मार्ग से अनभिज्ञ थे, बेमौत मारे गये। इस रास्ते में दूर आगे एक विषधर रहता है। जिसकी फुंकार से कोसों तक का वन सुनसान हो गया है। अन्य की तो बात ही क्या पक्षी तक नहीं दिखते, अगर निर्विरोध कोई वस्तु जाती आती है तो वह है हवा।

किन्तु उस पर भी विषैला प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। अतः कृपा करके आप इस मार्ग से न जाकर हम बतायें उस मार्ग से ही जायें।

धन्यवाद ! बाल मित्रो ! तुमने मुझे इस मार्ग का भयंकरता बता कर अपने कर्तव्य का पालन किया किन्तु अब मुझे भी अपने कर्तव्य का पालन करना है। केवल भयकरता के कारण मैं इस पथ को नहीं छोड़ सकता। मैं अपनी भरसक चेष्टा से उस विषधर को शात करूंगा। उसकी शक्ति का इस तरह दुरुपयोग नहीं होने दूगा।

लड़कों को बहुत अचरज हुआ। कैसा विचित्र तप वी है यह ! यह स्वयं विषधर का ग्रास बनने जा रहा है। वे बोले–महाराज हमने तो आपके भले के लिए ही कहा है परन्तु यदि आपको मरना ही प्रिय है तो जाइये। हम क्या कर सकते है।

साधु और कोई नही थे प्रभु महावीर थे। जिनकी रग रग मे दया का स्रोत बह रहा था। जिनके जीवन का एक मात्र ध्येय ही प्राणीमात्र का उद्धार करना था। इतने बड़े पापी का उद्धार कैसे नही करते। प्रभु वहीं उसकी बांबी के पास ध्यानस्थ खड़े होगए। मनुष्य की गंध पा सर्प ने अपने विकराल फण ऊपर उठाए। देखा, ठूंठ की तरह निर्भयता से एक मनुष्य खड़ा है। वह आगे बढ आया पर साधु अविचल थे। वह और आगे आया फुफकारा, तोभी अपने सामने उस मूर्ति को अचल खड़ा देखा। उसे अचरज हुआ। उसने सोचा–ऐसा कौन है जो चंडकोशिक विषधर की फुंफकार के सामने खड़ा रहे। उसका पारा चढ गया। उसने बड़ी क्रूरता के साथ आगे बढ

कर साधु पर प्रहार किया । सारा वन थर्रा गया । समस्त वायु मंडल विषैला नीला होगया । किन्तु वह मूर्ति न तो डिगी और न कुछ प्रतिकार ही किया । चंडकौशिक आश्चर्य भरी दृष्टि से कुछ अधिक गौर से उसे देखने लगा। रक्त की एक पतली धारा बह रही थी पर प्रतिकार की भावना का लेश नहीं था। ऐसी आनन्द दायक शांत मुख मुद्रा उसने इससे पूर्व कभी नहीं देखी थी। उसकी नसों में रक्तप्रवाह जमने लगा। शरीर कांप उठा। उसको इतनी निर्बलता महसूस होने लगी कि अपना शरीर सम्भालना कठिन होगया और उसका विकराल फन धड़ाम से साधु के चरणों पर जा पड़ा

एक शांत मधुर वाणी ने कहा— चण्डकौशिक,शांति और संयम से काम लो। देखो, संसार तुम्हें किस घृणा की नजर से देख रहा है। तुम्हारी प्रबल ज्वाला से घनी सुन्दर बस्तियां आज सुनसान जंगल बन गया है। प्राणीमात्र का आना जाना बंद हो गया है। सोचो, आज तुम्हारे कारण कितने सुखी परिवार बेघरबार और अनाथ हो गये जरा सोचो तुमने क्या किया है ? यह सब अच्छा है या बुरा ? पाप है या पुण्य ?

विषधर चंडकौशिक के सामने एक नया प्रश्न खड़ा हो गया। उसने विचारा, देखा,अतीत का उसका समग्र जीवन विषैली प्रतिहिंसा में बीत गया। कभी यह खयाल भी उसे न आया कि जीवन का उज्ज्वल कर्त्तव्य भी है। वह अपने कुकृत्यों पर व्यथित द्रवित हो गया। वह बढ़ कर भगवान के चरणों से लिपट गया। पर

इस बार का लिपटना पश्चात्ताप और करुणा का लिपटना था। उसके मुंह का विष अमृत हो कर बह चला। चारों ओर वन और वनस्थली में हरियाली और वसंत की दुनिया हंसने लगी।

प्रभु ने आशीर्वाद दिया—चण्डकौशिक तुम्हारा विष जैसा विकराल था तुम्हारा पश्चात्ताप भी वैसा ही प्रभावक है। तुम धन्य हो। मुंह उठाकर देखो अपनी नई सृष्टि को। वह क्षण भर में कैसा मोहक बन गई है!

चंडकौशिक ने आश्चर्य से अपने चारों ओर नजर डाली और कहा—यह सब प्रभु महावीर की विजयिनी करुणा और अहिंसा का प्रसाद है जिसने मेरे जीवन वृक्ष को पुण्य के प्रसून से पुष्पित किया है!

*

पश्चाताप

महा साध्वी राजमती अपनी साध्वियों के साथ गिरनार के ऊचे पर्वत पर अपने आराध्य देव भगवान अरिष्टनेमि के दर्शन करने गई। अभी वे कुछ दूर ऊपर चढ भी नहीं पाई थी कि मद मद हवा ने आधी का उग्र रूप धारण कर लिया। आंधी के साथ साथ घनघोर काले बादल बड़ी २ बू दों के रुप में बरसने लगे। अ'धकार इतना घना हो गया कि हाथ को हाथ दिखना कठिन हो गया। क्षण भर साध्वो ि चार में पड़ गई। क्या वापिस लौट जाय किन्तु नहीं यह कैसे हो सकता है। उसे विपत्ति से घबराकर पीछे नहीं हटना चाहिये। वह अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने लगी। किन्तु वह जिस साहस के साथ आगे बढ रही थी। हवा के उग्र झोंके कहीं अधिक प्रबल वेग से उसे पीछे धकेल रहे थे। साध्वी के पैर लड़खड़ाने लगे लम्बे सघर्ष के पश्चात साध्वी को रुक जाना ही श्रेष्ठ जान पड़ा। उसके वस्त्र एक दम भीग गये। साथ की साध्वियों का साथ छूट गया। साध्वी धीरे धीरे नीचे उतरी और पास ही की एक गुफा मे वस्त्र सुखाने के लिए चली गयी। अपने भीगे वस्त्र खोल कर फैलाये ही थे कि उसे कुछ आहट सुनाई दी। साध्वी ने चौक कर देखा उसे अस्पष्ट मानव छाया सो दीख पड़ो। नग्न साध्वी का शरीर नीचे से ऊपर तक सिहर उठा। मानों सर्दी की मौसम में पानी में कूद पड़ा

हो। उसका रोम रोम सजग उठा। निर्जन स्थान और वह भी इस नाजुक अवस्था में, अब क्या होगा साध्वी विचार मे पड़ गई। किन्तु उसी समय उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो कोई कह रहा है - सध्वी को भय कैसा? वह एक वार क्षत्री की पुत्री है। उसने एक क्षत्राणी का दूध पिया है। वह मौत से डरे? मौत से भय तो कायर और बुजदिलों को होता है। सतीत्व की रक्षा के लिये प्राण की बाजी भी सस्ती है आज ही तो परीक्षा देने का अवसर आया है। उसी समय साध्वी मर्कटासन लगा कर बैठ गई। आने वाली विपत्ति का मुकाबला करने के लिये।

गुफा में अंधेरा होने के कारण साध्वी उस पुरुष को नहीं देख सकी थी। किन्तु साधुवेशी रथनेमि की आंखों से राजमती छिपी न रही। राजमती को देखते ही उसकी सारी भावनाएं जाग उठीं। एक एक करके सारे दृश्य स्मरण हो उठे। राज मती द्वारा उसका त्याग राजमती को अपनी मानी के लिये भेजे हुए दूत का तिरस्कार और अन्त में यह साधुवेश।

रथनेमि कुछ आगे बढे और बोले—देवी आओ। निर्भीक होकर आगे बढो। यहाँ पर तुम्हें किसी प्रकार का भय करने की आवश्य कता नहीं। मैं और कोई नहीं तुम्हारा चिरपरिचित अनन्य उपासक रथनेमि हूँ। पुराने जोड़ स्मरण कर गढे मुर्दे उखाड़ने से क्या लाभ? आओ आज से हम नया जीवन प्रारम्भ करें। इस एकान्त स्थान में इस तरह चुपचाप क्यों बैठी हो। मेरे रहते तुम्हें किसी

प्रकार का विचार या भय न करना चाहिये। कितना सुन्दर और सुहावना समय है। बादल बरस २ कर थक चुके हैं। इन्द्रधनुष ने अपनी रंगीली छटा छा दी है। बादल उससे फाग खेलने में मस्त हैं। हवा के ये मादक ठंडे झोंके रग रग में नव जीवन का सचार कर रहे हैं। सारी प्रकृति मतवाली हो उठी है। अब और दूर न रहो राजुल आओ हम तुम एकाकार होकर इन क्षणों को अमर करदें। वियोग की इन घडियों को अब और अधिक न बढ़ाओ। मेरे बुझे दीप को प्रज्वलित करदो देवी हृदय की ज्वाला को शांत करना केवल तुम्हारे ही हाथ है। बहुत दिन तक तुम्हारा वियोग सहा किन्तु अब नहीं सहा जाता तुम्हारा वियोग।

साध्वी को यह जान कर बहुत संतोष हुआ कि यह और कोई नहीं प्रभु के लघु भ्राता रथनेमि हैं क्षणिक विकार के वशीभूत होकर ये पुन: अपनी सुध बुध भूल गए किन्तु फिर भी कुलीन हैं समझाने पर सही रास्ते पर आजायेंगे। वह तत्काल मर्कटासन लगाकर जल्दी जल्दी वस्त्र पहनने लगी।

रथनेमि धीरे धीरे आगे बढ़ कर विनय के स्वर में कहने लगे-देवी! यह समय सोच बिचार करने का नहीं। मेरी चिर दिनों की अभिलाषा को पूर्ण करके मुझे मनस्ताप से बचा लो। मेरी अर्चना को स्वीकार करो देवी! आज मैं तुम्हारी एक भी आना कानी नहीं सुनूंगा।

इस अर्से में साध्वी भी अपने वस्त्र पहन चुकी थी। वह अत्यन्त मधुर स्वर में बोली—रथनेमि आप साधु हैं। आपको इस तरह के

विचार शोभा नहीं देते। आपको ऐसी भावना स्वप्न में भी नहीं लानी चाहिये। जिस संसार को असार समझ कर त्याग चुके उसमें पुनः प्रवेश करना चाहते हैं ? सत्य मार्ग को त्याग कर असत्य मार्ग पर आना चाहते हैं। जिस दल दल से निकल चुके उसी में फिर फंसना चाहते हैं। क्षणिक जोश के वशीभूत होकर अपने कर्त्तव्य को न भूलिये। आप तो जानते हैं। इस नाशवान् शरीर के असली रूप को रक्त मांस और हड्डी मात्र।

बस करो देवी। इन सब व्यर्थ की बातों को भूल जाओ। मैं इन सब बातों को सुनने का इच्छुक नहीं। मैं अपने गत जीवन का व्योरा जानना नहीं चाहता कि मैं क्या था क्या हूं। मुझे इस सुहावने समय में तुम्हारा यह उपदेश नहीं चाहिए। यह सुअवसर इस तरह गंवा देने के लिए नहीं मिला। प्रकृति ने स्वयं हमें मिलाया है। मैं बार बार तुमसे प्रार्थना करता हूं कि यह अमूल्य क्षण इस तरह पर-स्पर विवाद में बिता देने के लिए नहीं। काश, तुम मेरे दर्द को समझ सकती।

साधु इस समय आप अपने आपे में नहीं। काम वासना के अधीन होकर आपने अपने साधुत्व को भी तिलांजलि दे दी। आप अपनी वे प्रतिज्ञाएं भूल गये जो आपने दीक्षित होते समय की थी। आप भगवान अरिष्टनेमि के भ्राता हैं, आप जैसे कुलीन क्षत्रिय को क्या यह सब शोभा देता है ? इस निर्जन स्थान में एक साध्वी के प्रति क्या आपका यही धर्म है ? अगर आपको इस अवस्था में कोई देख ले।

रथनेमि मुस्कराए- नहीं तुम बिलकुल भय न करो राजुल ! हां हमें कोई नहीं देख सकता। आज महीनों से मैं इस स्थान में तपस्या कर रहा हूँ। किन्तु किसी को भी मैंने आज तक इधर आते हुए नहीं देखा। यह स्थान ही इतना भयंकर है कि इधर आने का किसी का साहस ही नहीं होता। किसी प्रकार का संकोच न करो आओ अब हम तुम भिलग न रह कर प्रेम और एकता के अमर सूत्र में बंध जायं। हम इसी रम्य स्थान में अपने रहने के लिए एक छोटी सी कुटिया बना लेंगे। जिसकी महारानी तुम रहोगी। जंगल के पक्षी तुम्हें वन देवी की तरह पूजेंगे। मेरा तो सर्वस्व ही तुम पर न्योछावर है।

यह आपका भ्रम है रथनेमि। आप समझते हैं कोई नहीं देख रहा है क्या आपकी अपनी आत्मा इस की साक्षी देती है ? क्या दो मनुष्यों के बीच होने वाला पाप पाप नहीं होता ? क्या आप अपनी आत्मा से भी अपना पाप छिपा सकते हैं ? अपने को धोखा देने की चेष्टा न करो साधु। समय का प्रत्येक क्षण क्या उसका साक्षी नहीं होगा ?

कामातुर रथनेमि ने कहा तुम ठीक कहती हो। हमें छिपने की आवश्यकता नहीं। आओ हम दुनिया के समक्ष प्रगट होकर पाणि ग्रहण कर लें। फिर तो पाप, छल, कपट अन्याय, अत्याचार, अनुचित कुछ भी नहीं होगा देवी !

क्या आप वमन किया हुआ पदार्थ फिर ग्रहण कर सकते हैं उत्सुक साध्वी ने पूछा ?

यह तुम क्या कह रही हो देवी ? यह भी कोई पूछने की बात है कहीं ऐसा भी होता है ? वमन किया हुआ पदार्थ भी कहीं ग्रहण किया जाता है मनुष्य तो कभी ऐसा सोच भी नहीं सकता।

साध्वी को अपना तीर निशाने पर लगा जान कर कुछ आशा बंधी। उसने उत्साह के साथ कहा-जिस गृहस्थ धर्म को जंजाल झूठा सार-हीन समझ कर त्याग दिया था उसी में पुनः प्रवेश करने की कामना करना और वह भी एक ऐसी स्त्री के साथ जो उसी के बड़े भ्राता की पत्नी हो चुकी है क्या वमन किए हुए को ग्रहण करने से भी बदतर नहीं ? इससे अधिक निकृष्ट भावना और क्या हो सकती है ? दुनिया आपको किस नाम से याद करेगी ? आने वाली पढ़ी क्या सोचेगी ? ओह ! क्या इस धिक्कार को लेकर जी सकेंगे। क्या आप यह भी भूल गये—

कम्मसंगेहिसम्मूढा, दुक्खिया बहुवेयणा ।
अमाणुसासु जोणीसु, विणिहम्मन्ति पाणिणो ।

अर्थात्—जो प्राणी काम वासनाओं से विमूढ हैं, वे भयंकर दुःख तथा वेदना भोगते हुए चिर काल तक मनुष्येतर योनियों में भटकते रहते हैं ।

रथनेमि का सिर चकराने लगा। उन्हें दुनिया घूमती सी प्रतीत हुई। भविष्य के परिणामों ने उसकी उत्तेजना को क्षण भर में समूल नष्ट कर दिया। साधु, और साध्वी से प्रेम की भीख मांगे । उनका मुख म्लान हो गया। उनका वही साधुत्व पुनः जागृत हो उठा। साध्वी ! मुझे क्षमा करो। मुझ पापी को कुछ भी ज्ञान नहीं रहा था ।

तुमने मेरी आंखें खोल दी। मैं तुम्हारा जन्म भर उपकार मानूंगा। प्राण देकर भी इस जघन्य पाप का प्रायश्चित्त करूंगा। साध्वी मुझे दंड दो नतमस्तक रथनेमि ने अत्यन्त दीनता के स्वर में कहा।

साध्वी का मुख हर्ष से प्रफुल्लित हो उठा। उसको एक अपूर्व शान्ति मिली। उसका रोम रोम अपनी सफलता पर नाच उठा। उसने मुस्कराते हुए कहा—भूल करके उसको स्वीकार करना ही सबसे सच्चा प्रायश्चित्त है साधु। सुबह का खोया अगर शाम को भी वापिस घर लौट आए तो भूला नहीं माना जाता। आपकी पश्चात्ताप की भावना ने आपको कितना ऊंचा उठा दिया है यह आने वाला ज़माना जानेगा। आप धन्य हैं।

★

मुक्ति के पथ पर

राजगिरि नगरी के पनघट पर पनिहारियों ने कुछ उदास सौदागरों को बैठे देखा। सेठानी भद्रा की दासियों ने भी उन्हें देखा। वे दयार्द्र हो गईं। राजगिरि के श्रेष्ठी शालिभद्र की वे परिचारिकाएं। उन्होंने परस्पर चर्चा की क्या कहेंगे ये परदेशी। सहानुभूति जताते हुए उन्होंने पूछा—क्यों भाई, इस तरह उदास क्यों बैठे हो ? ऐसी कौन सी बात होगई ?

निराशा के स्वर में सौदागर बोला—नाम बड़े और दर्शन खोटे। हम लोग बड़ी दूर नेपाल से बहुमूल्य रत्न कम्बलें लेकर आये थे किन्तु जब यहाँ के महाराज श्रेणिक तक एक भी कम्बल नहीं खरीद सके तो दूसरा कौन उन्हें ले। हमारा तो यहाँ आना ही व्यर्थ हुआ।

सहास्य उत्तर मिला—ओह छोटी सी बात के लिये इतनी परेशानी। उठो हमारे साथ चलो। अगर पसन्द आगई तो हमारी सेठानीजी तुम्हारी सारी कम्बलें खरीद लेंगी, पर यह तो बताओ बदले में हमें क्या मिलेगा ?

निराश सौदागर ने मुसकराने की चेष्टा करते हुए कहा—तुम जो कुछ कहोगी तुम्हें वही मिल जायगा सुन्दरियो !

सेठानी भद्रा ने कम्बलें देखकर कहा—कम्बलें तो अच्छी हैं पर हैं तुम लोगों के पास सिर्फ सोलह ही। एक एक बहू के लिये एक एक ही लूं तो भी बत्तीस चाहिए।

"सौदागरों के आशान्वित मुख फिर म्लान होगए" । सोचा शायद इनका विचार खरीदने का नहीं है। उन्होंने विनय पूर्वक कहा—हमारे पास तो और अधिक नहीं हैं और न ही ऐसी बहुमूल्य कम्बलें फिर मिलने की आशा है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि आप को पसन्द आने के बाद भी कम होने की वजह से न ले सकीं।

तुम्हे मैं निराश नहीं करूंगी। एक एक के दो दो टुकड़े करके अपनी बहुओं को समझा लूंगी। लाओ कम्बलें यहाँ रख दो और खजाने से जाकर अपने रुपये ले लो।

सौदागरों की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। मुंह मांगे दाम पाकर वे कृतकृत्य हो गये।

दासियों ने हंस कर कहा—हमारा इनाम कहाँ है ?

हमने तुम्हें कहा था न सुन्दरियां ! तुम जो कहोगी वही हम देने को तैयार हैं। तुम जो चाहो खुशी से मांगो।

अगर सारे का सारा मांग लें एक ने हंसकर कहा!

हमें मंजूर है। यह भी तुम्हारे इस मधुर व्यवहार को देखते हुए कुछ नहीं है। हम तो और भी कुछ न्योछावर...

अच्छा अच्छा। रहने दो अपनी न्योछावर। अब तो बड़े वाचाल हो गये हो तुम लोग। कुछ समय पहले तो मुंह से बात भी नहीं निकलती थी। खैर, फिर कभी आओ तो ऐसी ही कम्बलें हमारी सेठानीजी के लिए और लाना। देखो भूलना मत।

किन्तु यह तो हमारे ही हित की बात हुई सुन्दरी! तुम्हें हमारा कितना ख्याल है। इसके लिए हम सब तुम लोगों को हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

अच्छा स्वीकार है। हंसती हुई दासियों ने परदेशी व्यापारियों को विदा दी।

× × × ×

सुबह का समय था। मेहतरानी स्नानघर साफ करने आई तो क्या देखती है कि रत्न कम्बलों के बत्तीस टुकड़े पड़े हैं। स्नानागार उनकी छटा से जगमगा रहा है। मेहतरानी की हिम्मत न हुई कि उन्हें छुए। उसने आवाज दी ये कपड़े समेट लो बहूजी। किसने बिखेर दिये हैं? उत्तर मिला—तुम ले जाओ। मेहतरानी चकराई। उसे विश्वास न हुआ। कितनी ही देर चित्रलिखी सी खड़ी रहने के पश्चात् धीरे धीरे रत्न कम्बलों को बटोर कर ले गई।

दूसरे दिन प्रातःकाल राजगिरि की महारानी ने अपनी अंगन

को रत्न कम्बल लपेटे देखा। ऐसी ही कम्बल के लिये उसने महाराज से मांग की थी। महाराज ने यह कहकर कि मूल्य बहुत अधिक है खरीदने में सकोच दरशाया था। महारानी के बदन में आग आग लग गई। उसने मेहतरानी को बुलवा कर पूछा—क्यों री यह कम्बल कहां से लाई ?

उत्तर मिला—सेठानी भद्रा के स्नानागार में पड़ी थी। कल सेठानीजी ने सोलह कम्बलें खरीद कर और प्रत्येक के दो दो टुकड़े कर अपनी पुत्रवधुओं को दे दिये थे। किन्तु उनकी पुत्र वधुओं ने अपने पतिदेव के चरणों को पोंछकर उन्हें स्नानागार में फेंक दिये।

रानी अवाक् रह गई। उसे विचार आया कि मुझसे भाग्य-शालिनी तो वह है। जिस एक कम्बल को मैं प्राप्त न कर सकी उसके बत्तीस टुकड़े इसके पास मौजूद हैं। मेरा महारानी होना वृथा है। आवेश में या शान में उसने अपने गले का मुक्ताहार मेहतरानी की तरफ फेंक कर कहा—ले मैं यह हार तुझे देती हूँ। इतना कह महारानी भीतर चली गई एक भारी दिल को लेकर।

बेचारी मेहतरानी अवाक् रह गई। उसे अपने पर विश्वास न हुआ। उसकी समझ में यह सब कुछ नहीं आया। सेठानीजी के यहां से रत्नकम्बलों के पूरे बत्तीस टुकड़े और महारानी से यह मुक्ताहार क्या सचमुच यह सब उसके हो गये। वह इसी

सोच विचार में रही उसने बहुत तरह से सोचा पर माजरा कुछ भी समझ में नहीं आया।

राजा श्रेणिक को जब पता चला कि महारानी कोप भवन में है तो तुरंत वहां गये। प्रश्न पर प्रश्न किये पर उत्तर न मिला। आखिर अत्यन्त आग्रह करने पर रानी ने यह कहते हुए अपनी मौन भग की और कहा—मैं क्या रानी हूँ! आप मुझे रानी कह कर चिढ़ाना छोड़ दीजिये।

राजा चकित होकर बोले—यह तुम क्या कह रही हो। क्या मैं कभी अपनी प्रियतमा के साथ इतना अन्याय कर सकता हूं। तुम्हें यह ख्याल कैसे आया। मुझ से साफ साफ कहो। मेरा हृदय शीघ्र सुनने के लिये विकल हो रहा है।

मैं क्या कहूं? आप अपनी रानी के लिये एक कम्बल भी नहीं खरीद सकते जब कि आपकी प्रजा में से सेठानी भद्रा की पुत्रवधुएं उन्हें पैर पोंछने में काम ले सकती हैं।

पैर पोंछने के लिए रत्न कम्बलें महाराज ने विस्मित होते हुए कहा।

हां महाराज! इन्हीं आंखों ने देखा है भंगन के पास जो उसे सेठानीजी के यहाँ से मिली हैं।

महाराज को विश्वास नहीं हो सका, पर महारानी पर अविश्वास भी कैसे करे। उन्होंने कहा—मैं स्वयं अभी इसका पता लगाऊँगा।

लोगों ने देखा, राजा श्रेणिक की सवारी भद्रा सेठानी के घर की ओर आ रही है। महाराज सेठानी के घर पहुँचे। भद्रा ने शानदार स्वागत किया।

मैं कुमार शालिभद्र को देखना चाहता हूँ, महाराज बोले।

भद्रा ने महाराज के चरणों में सिर झुकाते हुए कहा—मैं कुमार को यहीं बुलाती हूं। आप विराजें पास के सिंहासन की तरफ इशारा किया।

कुमार को कष्ट देने की जरूरत नहीं, मैं स्वयं चल रहा हूं। इधर पधारिये महाराज। कुमार ऊपर की मंजिल में रहता है। पहली मंजिल पर पहुंच कर महाराज पूछने लगे—कुमार किस तरफ है?

भद्रा ने बताया यह मंजिल तो नौकरों के लिए है। दूसरी मंजिल पर राजा के पूछने पर उत्तर मिला—यहाँ दासियाँ रहती हैं। आगे बढे तो मालूम हुआ यह तीसरी मंजिल मुनीमों के लिए है। चौथी मंजिल पर पहुँचे कि महाराज चकराये। वे निश्चय ही न कर सके कि यह जमीन है या पानी। राजा बड़ी दुविधा में फस गये। आगे बढे या नहीं। उन्होंने परीक्षार्थ अपनी अंगूठी फर्श पर डाल दी। अंगूठी खनखना उठी। मानो यह कहने के लिये कि निर्भय बढे आओ। महाराज ने उठाने का उपक्रम किया पर मिल न सकी। इधर उधर दृष्टि दौड़ाई पर बेकार, अंगूठी दिखाई न दी। यह देखकर

भद्रा ने अपने भंडारी को इशारा किया। फिर क्या था बहुत सी बहुमूल्य अगूंठियां आ गईं। भंडारी ने नम्रता से कहा—श्रीमान् को जो पसन्द हो ले लें। महाराज लज्जित हो गये। उन्होंने कहा—नहीं मैं तो फर्श का निरीक्षण कर रहा था। अब और अधिक मैं न चढ़ सकूंगा। कष्ट न हो तो कुमार को यहीं बुला लें।

भद्रा ने पुकारा—बेटा। नचे आओ, देखो तुम्हारे आंगन में नाथ पधारे हैं।

उत्तर मिला—खरीद कर भंडार में डाल दें। मैं कुछ नहीं जानता। मुनीमजी से कहें। पर आश्चर्य है ऐसी साधारण बातों के विषय में पहले आपने कभी नहीं पूछा।

कोई सौदागर नहीं बेटा! स्वयं हमारे यहाँ नाथ पधारे हैं। वे तुम्हें देखना चाहते हैं।

नाथ! मेरे भी कोई नाथ है! यह क्या बात! इतने दिन वे कहाँ थे? आश्चर्य चकित शालिभद्र नीचे उतरा।

महाराज ने प्रेम से कुमार को अपने पास बिठाया। उतरने के श्रम से कुमार थक गये। उनका कोमल गात मुरझा गया। आनन्दित मुख म्लान हो गया।

अब उसको समझने में देर न लगी। महल में रहना असह्य हो गया। उसने मन ही मन में दृढ़ संकल्प किया—अब की ऐसी

तपस्या करनी चाहिये जिससे किसी नाथ का अंकुश न रहे। उसी समय वह संसार को त्याग मुक्तिमार्ग का पथिक होकर चल पड़ा। किसी सघन वन की ओर। तपस्या व आत्म कल्याण के निमित्त जाते हुए उसे अपनी सम्पत्ति, सुन्दरियाँ कोई भी न अटका सकी।

कौन जाने उसकी सिद्धि का पवित्र स्थल संसार के किस भाग्यशाली प्रदेश में है। किन्तु जहां भी हो वह निश्चित है कि वह तीर्थस्थान अपनी एक विशेषता रखता अवश्य है।

★

अनुगमन

यह उस समय की बात है जब आज कल की तरह लोगों को मनोरंजन के साधन हर समय उपलब्ध नहीं होते थे। रेल और मोटर की भक भक और भों भों नहीं थी। एक से दूसरे शहर को जाने में महीनों लग जाते थे। नाटक मंडलियां वर्षों बाद आती थी। आज भी चिर प्रतीक्षा के बाद एक प्रसिद्ध नाटक मंडली ने आकर अपने डेरे डाले। उसे देखने शहर के अमीर गरीब बाल वृद्ध सब उमड़ पड़े थे। शहर के छोटे बड़े हर एक के मुंह पर उस मंडली की चर्चा थी।

लोगों ने देखा और दांतों तले ऊंगली दबा ली। बूढ़ों ने सफेद बालों को दुलारते हुए कहा—हमने अपनी उम्र में ऐसा सुन्दर नाटक कभी नहीं देखा। कितने साहस का काम था। मीर जैसे सीधे स्तम्भ पर काम करना उन्हीं का काम था। सब लोगों ने देखा, प्रशंसा की और चल दिए अपने अपने घर की ओर किन्तु उस भीड़ में का एक कुमार बैठा ही रहा। चांदी के सिक्कों को बटोर कर और अपने खेल के समान को बांध कर नट मंडली भी जब चलने लगी तब विचार मग्न कुमार की नींद खुली। नटों का कार्य सुन्दर था पर नटी का उससे भी कहीं अधिक सुन्दर और दक्षतापूर्ण। वह मृगनयनी कितनी फुर्ती से अपना

कार्य दिखा रही थी। सुन्दरता उसके प्रत्येक अंग से फूटी पड़ती थी। गजब की लचक जिधर चाहती मुड़ जाती जिस अंग को चाहती मोड़ लेती। उस लचक में कितनी मोहकता थी। उसकी नशीली आंखों की मादकता भरी तिरछी नजर से फेंके हुए बाण हृदय को बींध २ देते थे। सुरीले कंठ से निकली देववाणी और उसकी मृदुल मद भरी मुसकान! सुन्दरी के नयनों में कुमार उलझ जाना चाहता था। चाहता था उसके भुजबन्धों में खो जाना सदा के लिए। पर यह क्या संभव हो सकता है वह नट और मैं बनिया। किन्तु इससे क्या प्रेम मार्ग में कोई भी अपना रोड़ा नहीं अटका सकता। तो क्या मैं इसके सन्मुख अपना प्रस्ताव रक्खूं ? किन्तु नहीं इससे पूर्व पिता जी से पूछ लेना आवश्यक है। यदि उन्होंने इन्कार किया तो, तो क्या परिणाम होगा ? उपेक्षा और इसका मतलब सम्पत्ति से वंचित और गृह-त्याग हुआ करे यह संभव है किन्तु उसे त्यागना असंभव है उसके लिए इससे कठिन उत्सर्ग करने के लिए वह तैयार है सहर्ष। इन्हीं विचारों में उलझा हुआ कुमार घर पहुँचा।

सेठजी ने सुना, और सुनते ही दंग रह गये। उन्हें अपने कानों पर विश्वास न हुआ। उनके कान ऐसी बात सुनने के आदी न थे। उन्होंने फिर पूछा—क्या कहते हो कुमार ?

पिताजी मेरा यह ········

यदि तुम कहो तो उससे कहीं अधिक सुन्दर और कुलीन

कुमारी से तुम्हारा विवाह कर दूं।

आपकी कृपा। पर यह मेरा अन्तिम निर्णय है। मुझे दुख है कि मैं आपको ....

शांत हो जाओ बेटा! तुम्हारा दोष नहीं। यह जवानी जब आती है तो इसी तरह आती है।

पिताजी ....

जाओ बेटा जाकर सो जाओ। सुबह तक इस विचार को त्याग कर ही मुझे मुंह दिखाना। इससे अधिक और कुछ भी मैं सुनना नहीं चाहता। कुमार इस तरह की निर्लज्जता की आशा मुझे तुम से न थी। वणिकों का नटों से सम्बन्ध जोड़ना असम्भव है। जाओ बूढ़े बाप के इन मेरे सफेद बालों का ध्यान रखना।

जाओ, जाओ, जाओ। जाते क्यों नही कुमार पिता का निर्णय प्रत्यक्ष है। और कुमार ने नट मंडली के निवास स्थान पर जाकर सांस ली। कुमार को आया जान नाटक नेता ने बहुत ही नम्र भाव से कहा पधारिये श्रीमान्, कहिये मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं।

मैं तुम्हारी लड़की से शादी करना चाहता हूँ झेंपते हुए कुमार ने अत्यन्त क्षीण स्वर में कहा।

किन्तु मैं इसके लिए तैयार नहीं हूँ।

कुमार के मानो किसी ने एक जोर का तमाचा मारा हो। उसका मुंह फक हो गया। आज तक किसी ने उसकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया। फिर भी किसी तरह छा— कारण?

कारण! शायद आपको मालूम नहीं की यही मेरी एक मात्र पुत्री और मेरी कुबेर है। क्या इसको ले जाकर आप मुझे दर दर का भिखारी बनाना चाहते हैं। फिर अपनी जाति का छोड़कर आपके साथ विवाह कैसे कर सकता हूं।

कुमार को एक गहरा आघात पहुंचा। क्षण भर पहले वह हजारों की संपति दान कर सकता था किन्तु अब पिता की कौड़ी पर भी उसका अधिकार नहीं। तब उसकी धन लालसा को कैसे मिटाया जाय। कुमार कुछ भी निर्णय न कर सका। उसकी बुद्धि जबाब दे चुकी थी। उसको एक भी उपाय न सूझा।

कुमार आप इस विचार को त्याग दीजीये। यही आपके लिए उचित है।

कुमार ने अत्यन्त क्षीण स्वर में कहा—यह असंभव है। मैं किसी भी तरह इसको नही त्याग सकता। उसने मेरे हृदय में स्थान पा लिया है नट। कुछ रुक कर दीनता के स्वर में कहा—नट, क्या इसका कोई उपाय तुम बता सकते हो।

नट ने कुछ सोच कर कहा— तो सुनिये, गृहत्याग, मात पिता और कुटुम्बियों का त्याग, जाति और नगर का त्याग।

उसके बाद आपको हमारे साथ साथ रहकर हमारी नट कला का काम सीखना होगा । उसके पश्चात् जब आप पूर्ण निपुण हो जायेंगे तब मैं आपकी इच्छा पूरी कर सकता हू । बशर्ते कि आप काफी धन भी पैदा करके ले आयें ।

कुमार ने उत्साहित होते हुए कहा— इसके लिए मैं तैयार हू नटी के सामने कुमार हर एक त्याग को तुच्छ समझता था।

समय जाते हुए देर नहीं लगती । समय के साथ कुमार भी नट विद्या में निपुण हो गया । एक लगन थी । उसको नट विद्या के काम में इतना अच्छा अभ्यास हो गया कि दर्शक ही क्यों उसके गुरु भी आश्चर्य चकित हो जाते थे । आज कुमार की अंतिम परीक्षा थी । वेनातट के राजा और प्रजा के सामने सारा खचाखच भरा हुआ था । उनके सामने अपनी उत्तम से उत्तम कला दिखा कर इतना धन प्राप्त करना था जिससे उसका भावी ससुर सतुष्ट हो जाय । उसका हृदय धुक धुक कर रहा था । आज वह अपनी सारी निपुणता दिखा देना चाहता था । भावी सुखद कल्पना ने उसे विभोर कर दिया था । उसने अत्यन्त उत्साहित हो कर अपने खेल दिखाने शुरू किये । सारे दर्शक मूक भाव से देखते रहे । वे इसमें इतने रीझ गये कि उन्हें समय का ज्ञान ही न रहा । उनकी नींद तब खुली जब उसने बांस से नीचे उतर कर एक आशाभरी दृष्टि राजा पर डाल दी । दर्शक उसकी कला पर मुग्ध हो गए सब के हाथ

अपूर्व सुन्दरी उन्हें भिक्षा दान दे रही थी। किन्तु साधु जैसे हाड मास का बना जीव नहीं था। उसकी आंखें पृथ्वी की ओर झुकी हुई थी। उसका पुरुषत्व अपने आप में लीन था। समार और विलास का एकान्त तिरस्कार करता हुआ यह युवा तपस्वी उस प्रेमी नर्तक के लिए एक अद्भुत प्राणी था। अपनी कला प्रदर्शन को वहीं रोक कर, दर्शकों की वाह वाही की परवाह किये बिना, वह तपस्वी साधु के चरणों में जा गिरा।

साधु ने उसके सिर पर अपना हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। पूछा क्या चाहते हो वत्स ?

उन्मत्त मन की चंचलता का पर्यवसान, आत्मा का संयम, वासनाओं की शांति — वैसा ही जैसा आपने प्राप्त किया है। उसने कहा ?

मैं स्वयं इन सब का भिखारी हूं। साधना के कठिन मार्ग में अभी मैं दो पग भी तो नहीं बढ़ पाया हूँ-साधु ने उत्तर दिया।

आपकी अश्लिष्ट चित्तवृत्ति मेरे निकट इसी कारण और भी स्पृहणीय हो उठी है। भगवन् ! क्या आप मुझे इसी मार्ग पर नहीं ले चलेंगे ?

कांटों का यह पथ अन्ततः मंगलमय है। इस पर हर एक प्राणी का स्वागत है। तुम आओ, जिनेश्वर के पथ पर तुम आओ परन्तु आने से पहले शांत मन से संयम और त्याग तपस्या को वरण कर लो।

इलायची कुमार—मुझे स्वीकार है। आपके संयम का माहात्म्य मेरा पथ प्रदर्शक हो।

साधु—भगवान् जिनेश्वर का शासन प्रशस्त हो।

इलायची कुमार के अन्तर में ज्ञान का आलोक प्रदीप्त हुआ। उसे लगा कि रूप और यौवन की क्षणिक छाया के पीछे दौड़ता हुआ वह कितना भ्रमित था। उसी समय नट कन्या ने पीछे से उसके कंधे पर हाथ रख कर कहा—कुमार, प्राणाधिक! भाग्योदय की इस शुभ वेला में तुम यहां क्या कर रहे हो?

कुमार ने उसकी ओर देखा और कहा—शुभे! भाग्योदय के मंगल पथ पर चल पड़ा हूं मैं, अब तुम मुझे मत रोको।

पृथ्वी पर दृष्टि गड़ाए वह साधु के चरण चिन्हों का अनुगमन करने लगा। नटी स्तब्ध इस परिवर्तन को देख रही थी पर समझ न पा रही थी।

✱

बाहुबली

भरत और बाहुबली के वीर सुभटों की चिर प्रतीक्षित तलवारें म्यान से बाहर होकर अपनी प्यास बुझाने के निमित चलना ही चाहती थी कि भरत और बाहुबली के वीर योद्धाओं ने सुना—रण में निर्भीक जूझने वाले सैनिको! अपनी प्रकृति के विरुद्ध शान्त हो जाओ। अपनी स्वामी आज्ञा को शिरोधार्य कर के अतृप्त तलवारों को म्यान में डाल लो। यद्यपि इससे तुम लोगों का कम दुःख न होगा किन्तु फिर भी यह आज्ञा इस लिए मिली है कि महाराज स्वयं अपने प्रतिद्वन्द्वी के साथ द्वन्द्व युद्ध करना चाहते हैं। यह सुनते ही दोनों ओर के शूरवीरों के मुंह इस तरह म्लान हो गये मानो उन पर वज्रपात हुआ हो सब के सब भौचक्के से अवाक् से रह गये। उठे हाथ उठे ही रह गये। क्षण भर के लिए भी अपना अपना पराक्रम दिखाने का अवसर न मिला। मन की लालसा-उत्साह-मन ही में रह गई।

महा पराक्रमी भरत तथा ओजस्वी विपुल बलशाली बाहुबली भ्रातृत्व का नाता छोड़ समर भूमि में आ डटे। सब प्रथम दृष्टि युद्ध हुआ। बड़े भाई ने छोटे भाई को और छोटे भाई ने बड़े भाई को रक्तमय आंखों से देखा। वे देखते ही रहे एक टक अविराम। दर्शक स्तब्ध थे। पर उन दोनों में से किसी की दृष्टि अस्थिर न होती थी। आखिर भरत के रक्तमय नेत्रों से

अश्रुधारा बह चली। बाहुबली की सेना ने विजय की दुँदुभि बजाई। भरत की सेना मे निराशा—उदासी छा गई। इसके पश्चात् वाणी युद्ध हुआ। इस बार भी विजय बाहुबली की हुई। तत्काल लोगों ने बाहु युद्ध देखा। बाहुबली फिर भी विजयी हुए। अब भरत ने घूंसे के द्वारा विजय की चेष्टा की। क्षण भर के लिये भरत के प्रहार ने बाहुबली को घुटनों तक जमीन में धसा दिया किन्तु प्रत्युत्तर में दर्शकों ने भरत को गर्दन तक धंसे पाया। आखिरी चेष्टा भरत की अपने अमोघ अस्त्र चक्र द्वारा थी। जिसने अनेकों बार भरत को विजय श्री दी जिसने वर्षों तक भरत की सेवा की आज उसी विश्वासी चक्र ने उसे धोखा दिया। वर्षों की दोस्ती मिट्टी में मिल गई।

भरतेश्वर के इस नियम विरुद्ध अस्त्र का प्रयोग देखकर तक्ष शिलापति बाहुबली का चेहरा तमतमा उठा। भुजाएं फड़क उठीं। उनके लिए अब यह असह्य हो गया। बाहुबली आवेश में आकर घूसे को ताने हुए भरतपति की ओर लपके। अभी वे उस वज्र से कठोर घूसे का प्रहार करना ही चाहते थे कि अन्तर की पुकार उठी—यह क्या कर रहे हो ऋषभनंदन ! सावधान ये हाथ बड़े भाई पर प्रहार के लिये नहीं बनाये गये हैं। तुम वीर क्षत्रिय कुमार हो पूजनीय भाई पर आघात करना तुम्हें शोभा नहीं देता।

बाहुबली चकराया और प्रश्न उठा कौन हो तुम मुझे ज्ञान का पाठ देने वाले किसने कहा था उपदेश देने के लिए ?

तत्काल उत्तर आया—सद्बुद्धि ।

सद्बुद्धि ! ओह तो तुम मुझे ज्ञान मार्ग दिखाने आई हो किन्तु क्यों किसने कहा था तुम्हें मार्ग प्रदर्शिका बनने के लिये? भूला पथिक दूसरे को क्या मार्ग दिखायेगा । जिसे तुम्हारी आवश्यकता है उसके पास क्यों नहीं जाती। अज्ञानी भरत को यह क्यों नहीं बताती जो दूसरों की स्वाधीनता छीनने के लिए न्याय अन्याय का विचार तक छोड़ चुका है । राज्य के मोह में अंधा होकर समर भूमि के नियमों के विरुद्ध आचरण करने में भी नहीं हिचका। जाओ यह सब व्यर्थ माया जाल मुझ पर फैलाने की चेष्टा न करो ।

सद्बुद्धि की पुकार फिर सुनाई दी—भोले राजन् ! जरा समझ से काम लो । क्षणिक और मिथ्या सुख के लिए इतना बड़ा अनर्थ कर तुम भी उसी राज्य के मोह में फस कर इससे महान् अनर्थ को करने पर उतारू हो । जिस राज्य को तुम्हारे पिता, भाई तृणवत् समझ त्याग गये । उसी के एक टुकड़े के लिए तुम अपने बड़े भाई के मान अपमान का जरा भी ख्याल न करके जान लेने उतारू हो । तुम्हें यह नहीं भूल जाना चाहिये कि— वैर से वैर कभी शांत नहीं होता । वैर को प्रेम से ही जीता जा सकता है ।

जिस प्रकार वीर और सच्चे योद्धाओं का प्रहार कभी खाली नहीं जा सकता उस प्रकार मेरी मुष्टि भी व्यर्थ नहीं जा सकती।

बाहुबली ने चिल्ला कर कहा।

' हा हा हा ' — सहास्य उत्तर मिला— इसीलिये तो हठ पूर्वक बार बार कहती हूँ कि वीर तुम भ्रम में हो। अगर तुम चाहो तो इस महान् अपराध से बच कर इस जघन्य पाप से मुक्त पा सकते हो। अगर तुम सचमुच वीर और सच्चे योद्धा की तरह अपना प्रहार खाली गमाना नहीं चाहते तो उठाई मुष्टि का प्रहार सच्चे शत्रु पर करो।

भरत के सिवाय इस समय दूसरा और कौन मेरा शत्रु है जिस पर मैं वह प्रहार करूं ? साश्चर्य बाहुबली ने प्रश्न किया।

कुछ गहरे उतरो। तुम्हारा सच्चा शत्रु तुम्हारी आत्मा ही है। जिसने तुम्हें मोह के दल दल में फसा रक्खा है। सिर काटने वाला शत्रु भी उतना अपकार नहीं करता जितना की दुराचरण मे लगी हुई अपनी आत्मा करती है। महाप्रभु आदिनाथ जो सांसारिक दृष्टि में तुम्हारे पिता थे उन्होंने जिस नियम का विधान किया था क्या उसको इतनी जल्दी भूल गये ? अचानक बाहुबली का हाथ सिर के केशों पर जा पड़ा। इन्हीं का लुंचन करके ही तो भगवान् ने आत्मा पर विजय प्राप्त करने के निमित्त साधु जीवन को ग्रहण किया था और तत्काल ही बाहुबली ने भी प्रभु का अनुसरण किया। उस उठाई हुई मुष्टि को खोल कर उसी हाथ से पंचमुष्टि लुंचन करके अपने सच्चे शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए उसी स्थान मे ध्यानस्थ खड़े होगये। क्षण भर में युद्धस्थल तपस्या स्थल बन गया। वर्षो तक लोगों ने

बाहुबली को ढूंढने की चेष्टा की। उनकी बहन ब्राह्मी और सुन्दरी ने भी उन्हें उसी स्थान पर खोजा पर वे वहां न मिले। हां जिस स्थान पर वे ध्यानस्थ मग्न हुए थे वहां पर उन्हें लताओं से आच्छादित वृक्ष तथा जालों से ढका हुआ ठूंठ की तरह लम्बा अचल कुछ दिखाई अवश्य दिया। शायद इसी के नीचे वह ध्यानी ध्यानस्थ अपने शत्रु का दमन करने में संलग्न था पर ब्राह्मी और सुन्दरी उन्हें ढूंढ सकी या नहीं यह कोई नहीं कह सकता, और कहां कि उन्होंने अपने शत्रु पर विजय प्राप्त की यह भी जगत के लोगों को अपरिचित ही रहा। किन्तु यह ध्वनि वहां आज भी सुनाई देती है। —

अप्पा चेव दमेयव्वो अप्पा हु खलु दुद्दमो।
अप्पा दन्तो सुही होइ, अस्सिं लोए परत्थ य॥

अर्थात्—अपने आप को ही दमन करना चाहिए। वास्तव में अपने आपको दमन करना ही कठिन है अपने आपको दमन करने वाला इस लोक में तथा परलोक में सुखी होता है।

★

प्रकाश किरण

ए वाणी ! तू स्वयं अनङ्ग है । किन्तु तेरी शक्ति असीम है । मर्म पर किया हुआ तेरा प्रहार कभी खाली नहीं गया। वीर को कायर और कायर को वीर, साधु को असाधु और असाधु को साधु बनाने की और किस में शक्ति है ।

एक युवा—बलिष्ठ युवा, बुगलों सी श्वेत संगमरमर की चमकीली चौकी पर बैठा था—अर्ध नग्न देह । स्नान के निमित्त अपने स्नानागार में । यौवन के भार से लदी हुई आठ अपूर्व सुन्दरियां अपने अति सुकुमार गोरे गोरे हाथों से उबटन मल रही थी उस युवा पुरुष के । साथ साथ बातें भी हो रही थीं उनके बीच इधर उधर की विनोदभरी । प्रश्नोत्तर की झड़ी लगी हुई थी । एक सुन्दरी के प्रश्न का उत्तर देने का वह उपक्रम कर ही रहा था कि चौंका यह क्या उसकी पीठ पर यह गर्म बूंद कहाँ से पड़ी ? क्या कोई वियोगिनी आकाशगमन कर रही है जिज्ञासु की दृष्टि से उसने ऊपर को ओर देखा पर कुछ भी दिखाई नहीं दिया। पुनः देखा और देखा पीठ पीछे की मृगनयनी के नेत्र धैर्य खो बैठे थे । उसने अतीव मधुर स्वर में किन्तु अधैर्य के साथ पूछा क्यों सुभद्रे! ये आंसू कैसे ? क्या किसी ने तुम्हारा......

सुभद्रा ने चटपट अपनी आंखे पोंछकर हंसने की चेष्टा करते हुए कहा—कुछ नहीं नाथ, यों हीं कोई खास बात नहीं ।

युवा पुरुष मुसकराये और कहा—खास नहीं तो साधारण ही सही पर क्या हुआ मेरी रानी को और उसे अपनी ओर खींच लिया ।

सुभद्रा जरा सहमती हुई बोली—यों ही जरा भैया का ख्याल आ गया । इतनी बड़ी सम्पत्ति को कुटुम्ब को त्याग कर साधु बनने जा रहे हैं । माताजी, भाभियों .. . .

सुभद्रा और भी कुछ कहे उसके पहले ही साश्चर्य युवा ने पूछा कब ?

सुभद्रा—बत्तीसों भाभियों को क्रमश: एक एक दिन समझा कर फिर दीक्षित होंगे ।

युवा ने मुसकराते हुए चिढ़ाने के स्वर में कहा—तो तुम्हारे प्रिय बंधु साधु बन रहे हैं । पर आश्चर्य इस तरह बुजदिल आदमी क्या लेंगे दीक्षा । जिन्हें एक महीना तो स्त्रियों को समझाने में ही लग जायगा ।

इस कुटिल कटाक्ष ने सुन्दरी के हृदय में क्रोधानल धधका दिया । उसे ऐसा लगा मानों सैकड़ों बिच्छुओं ने एक साथ उसके अंतस्थल पर डक प्रहार किया हो । अपने प्रिय बंधु का अपमान और वह भी अपनी सौतों के सामने । उसके कपोलों

पर अरुणिमा छा गई पल भर पहले का उदास मुख हर्ष में परिणित हागया। अपने आत्म सम्मान पर इतनी गहरी चोट वह कैसे सहन कर सकती थी फिर भी आवेश को दबाते हुए कहा—प्राणनाथ ! जितना कहना सुगम है उतना करना नहीं। व्यर्थ गाल बजाने से लाभ नहीं। जो अपनी देवांगनाओं सी बत्तीस अप्सराओं को त्याग रहे हैं। मां बहिन घर बार सुख ऐश्वर्य सब कुछ छोड़ रहे हैं। उन्हें आप कायर कहते हैं। जिसने स्वप्न में भी देहली के बाहर पैर नहीं रखा वे ही उस कठिन मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं। जिसे देख सुन कर अच्छे अच्छे शूरमाओं के भी छक्के छूट जाते हैं। उन कठिन उपसर्गो को भी फूल समझ रहे हैं। क्या उन्हे कायर कहना उचित है ? कहते कहते सुभद्रा की आंखों में आंसुओं की झड़ी सी लग गई।

'जितना कहना सुगम है उतना करना नहीं।' यह छोटा सा वाक्य उस युवा के तीर सा लगा। वह व्यंग था किन्तु कितना सुन्दर सुझाव पूर्ण और आत्मोन्नति का प्रदर्शक। उसका रोम रोम अपने को धिक्कारने लगा। उसने अत्यन्त पश्चात्ताप के स्वर में कहा—तुम ठीक कहती हो। अंधेरे से निकाल कर तुमने मुझे प्रकाश में ला दिया। सचमुच उसका पथ वीरता पूर्ण है किन्तु उसका धैर्य मेरे लिए असह्य है , मैं अभी इसी समय उसके पास जाता हूँ , इस बिलम्ब के लिए उपालम्भ देने। हम दोनों एक ही साथ उस अमर पथ के पथिक बनेंगे। वह

उठ खड़ा हुआ । सुभद्रा चकित सी खड़ी रह गई ।

आठों सुन्दरियों के मुख मुर्झा गए । उन्हें पृथ्वी घूमती सी लगी । उनकी बुद्धि बेकार सी हो गई । सुभद्रा ने स्वस्थ हो कर कहा—नाथ आप क्या कह रहे हैं ? हसी मखौल की बात पर इतने नाराज होगए । हमें क्षमा कर दें ।

युवा ने कहा—तुम्हारे लिये निश्चय ही यह हसी रही होगी किन्तु मुझे इसमें तुमने एक महान् पथ दिखा दिया है सुन्दरी। तुम्हारी इस हंसी में मेरी मुक्ति निहित है । इस उपकार को मैं जीवन भर नहीं भूलूंगा । अच्छा अलविदा । और वह निकल कर चल दिया ।

सुभद्रा को अपनी जीभ खींच लेने की इच्छा हुई । उसने कातर कंठ से रोक कर कहा—नाथ ! हमारी क्या गति होगी ? मेरे पर तरस नहीं आता तो इन सातों का तो विचार कीजिये । कसूर मेरा है दंड मुझे मिलना चाहिये । हम आप के बिना कैसे जियेंगी सब एक साथ बोल उठीं । उनके स्वरों में कंपन था ।

चलता चलता युवक रुका और पीछे मुड़ कर कहा—किसी का अपराध नहीं । तुम्हारा भी नहीं सुभद्रे ! अब रही तुम लोगों की बात सो अगर इच्छा हो तो तुम भी उसी उत्तम मार्ग का अनुसरण कर सकती हो । इस मायावी संसार से मुक्ति पा सकती हो । बोलो, अगर इच्छा हो तो आओ मुक्ति भी साथ ही साथ प्राप्त करें ।

सुभद्रा की आंखे चमक उठीं। उसने कहा—मेरा भी वही मार्ग होगा जो आपका है। मेरे प्राणाधार का मार्ग ही मेरे लिए उत्तम मार्ग है।

युवक ने परीक्षार्थ कहा—किन्तु यह मार्ग सुगम नहीं है देवि! यह मैं जानती हूं नाथ। उसके स्वर में दृढ़ता थी सुभद्रा अपनी सौतों की नेत्री बनी। उन्हें लेकर श्वेत वस्त्रों से सुशोभित हो वह महासाध्वी के रूप में निकल पड़ी अपने जीवन साथी के पथ पर सच्ची जीवन-सगिनी बनने। इसके बाद जीवन पर्यन्त उसने अपने आराध्य का साथ निभाया। वह न मालूम कितनों के लिए प्रकाश-किरण बन सकी।

★

न्याय

ये पुत्र सुदर्शन के हा हा हा ! यह तो किसी अन्य भाग्यशाली के हैं महारानी । हंसते हुए कपिला ने कहा ।

किन्तु तुम ऐसा किस आधार पर कह सकती हो साश्चर्य महारानी अभया ने पूछा ?

कपिला ने बात टालने की गरज से कहा—छोड़िये इस किस्से को । अपने को क्या इससे ।

यह नहीं हो सकता कपिला । दृढ़ता के स्वर में चम्पा की पटरानी ने कहा ।

इसका बड़ा गूढ़ रहस्य है । क्या करेंगी सुन कर महारानीजी कपिला बोली ।

किन्तु मैंने तो कोई भी बात तुमसे गुप्त नहीं रक्खी कपिला । फिर यह आनाकानी कैसी ? तुम्हें बताना ही होगा कुछ अधिकार के स्वर में महारानी बोली ।

कपिला ने कुछ सोच कर कहा—तो सुनिये महारानीजी अब आपसे क्या पर्दा । पतिदेव एक बार परदेश गये हुए थे । मैं भी ऐसे ही मौके की ताक में थी । बस उनके जाते ही मैंने सेठ

सुदर्शन को कहलाया कि तुम्हारा मित्र कपिल सख्त बीमार है, अतः आप शीघ्र पधारें। बस इतना सुनना था कि सेठजी तत्काल आ पहुँचे। ऊपर के सजे कमरे में मेरा साक्षात्कार हुआ। मैंने जब अपना प्रस्ताव रक्खा तो सेठजी लजाते हुए बोले-रूपरानी! यह अनमोल स्वर्ण अवसर चूके ऐसा महामूर्ख कौन होगा पर यह अभागा पुरुषत्वहीन है जिसे शायद तुम नहीं जानतीं। मेरा हृदय सूखे पत्ते की तरह कांप उठा। काटो तो खून नहीं। ऐसी महान् विपत्ति जिसकी कल्पना भी न थी। यह सुन कर मैं स्तम्भित सी रह गयी। अब मेरा क्या होगा मैं यह सोच ही रही थी कि सेठ ने कहा—डरो मत देवि! मैं इस बात को किसी पर प्रगट न करूंगा। विश्वास रखो। इसमें मेरी भी तो बदनामी है। तुम भी इसका ध्यान रखना। ऐसा न हो कहीं तुम किसी बात में फंस जाओ। और मुसकराते हुए चले गये।

रानी ने दयापूर्ण स्वर में कहा—मूर्खा तू छली गई। त्रिया होकर भी तू अपने त्रियाचरित्र को नहीं जानती। बड़े दुःख की बात है।

कपिला-अगर यह सच है तो इसको कोई भी नहीं छल सकता। मैं तो क्या अगर इन्द्र के अखाड़े की अप्सराएं मेनका और उर्वशी भी उतर आये तो वे भी सफल नहीं हो सकती महारानीजी। आप विश्वास मानिये।

तुम्हारी यह चुनौती मुझे स्वीकार है। पगली कहीं की तूं क्या जाने त्रिया चरित्र को। स्त्री की शक्ति तूं अभी तक पह-

चानती नहीं। यह तो बेचारा किस खेत की मूली है, उसमें समस्त ब्रह्मांड को हिला देने का शक्ति है। अगर कौमुदी महोत्सव में इसको मेरे चरण चूमते न दिखा दूं तो मेरा नाम अभया नहीं। प्रतिज्ञा के स्वर में रानी बोली।

× × × ×

चम्पा की पटरानी ने गर्वित हृदय से कहा — अरे भाग्यवान सेठ! अपने नेत्र खोल। इस ढोंग को छोड़। देख चम्पा की पटरानी तेरे सामने हाथ बान्धे खड़ी है। आज तेरे भाग्य का सूर्य चमका है कि महारानी तुमसे प्रेम की भिक्षा माग रही है। वह आज तेरे चरणों पर अपना सर्वस्व समर्पण करने को उत्सुक है।

ध्यानी फिर भी मौन रहा। वह अपने ध्यान ही में तल्लीन रहा। उसने ध्यानस्थ रहना ही उचित समझा।

रानी के लिए ध्यानी का विलम्ब असह्य होगया वह उग्रता के साथ बोली--ढोंगी! अब यह ढोंग मुझ से अधिक देर न कर। मैं तेरे ढोंग को अच्छी तरह जानती हूं। यह न समझना कि मैं क्रूर नहीं हो सकती। अगर तेने जरा भी विलम्ब और आनाकानी की तो मौत निश्चित है

ध्यानी ने अपने नेत्र खोले। चारों ओर एक दृष्टि फेंक कर कहा माँ ऐसा न कहो। यह आपके योग्य नहीं। अपनी मर्यादा से आगे न बढें। माँ के पवित्र नाम को न लजायें। आप राज-

माता हैं यह न भूलें। आप देश की माँ है।

बस बस रहने दे अभागे! तू समझता है मूर्ख कपिला को छला है उसी प्रकार मुझे भी छल लेगा। किन्तु याद रख मुझे छलना आसान नहीं, बल्कि असंभव है।

हो सकता है। किन्तु आप याद रक्खे अगर समुद्र अपनी मर्यादा छोड़ दे। हिमालय अपनी अटलता त्याग दे तो भी मेरा डिगना असम्भव है माता। आप इस गन्दे विचार को त्याग दें इसी में भलाई है।

इन वाक्यों से रानी का क्रोध भडक उठा —तू जानता है, यदि इस समय मैं संतरियों को बुला लूं तो तेरी क्या गति होगी?

जानता हूं— मृत्यु, किन्तु इसका भय मुझे नहीं है राज माता। अविचल भाव से किन्तु दृढता के स्वर में सेठ ने कहा। मौत से अधिक प्यारा मुझे अपना धर्म है। भगवान् आपको सुबुद्धि दे।

तेरी इतनी हिम्मत। अच्छा तो देख इसका मजा अभी चखाती हूं। रानी ने अपने परिधान फाड़ लिये। आभूषण तोड़ तोड़ कर फेंक दिये, शरीर नोच लिया और चिल्ला उठी बचाओ बचाओ। सशस्त्र संतरियों का एक झुंड हड़बड़ाता हुआ आ गया। रानी ने चिल्ला कर कहा देखते क्या हो? पकड़ लो इस बदमाश को। आखिर तुम सब लोग कहाँ मर गये थे यह दुष्ट महल में कैसे घुस गया।

× × × ×

सेठ दरबार में हाजिर किया गया। महाराज ने पूछा सेठ तुम मेरी नगरी में सब से अधिक धर्मात्मा माने जाते थे। तुम इस नगरी के नगर सेठ थे फिर तुम्हारा यह हाल कैसे हुआ। तुम्हारी इतनी हिम्मत कैसे हुई। जवाब दो।

सेठ मौन रहे। उन्होंने विचार किया अगर मैं अपनी सफाई दूंगा तो राजमाता पर कलंक का टीका लगेगा। इससे मेरे देश की बदनामी होगी मातृत्व लजाएगा। नहीं नहीं मैं राजमाता पर आंच भी न आने दूंगा चाहे इसके लिए मुझे कितना ही बड़ा दंड क्यों न मिले। वे मौन ही रहे।

सेठ की मौन राजा तथा दरबारियों के लिए असह्य हो गई। वे बोले जानते हो सेठ मौन का मतलब अपने पाप की स्वीकृति और उसका दंड मौत से कम नहीं।

किन्तु फिर भी मौन भंग न हुई। हुक्म हुआ उसे ले जाकर अभी तुरन्त शूली पर चढ़ा दो। ऐसे पापी के लिए यह सजा भी कम है।

चम्पावासियों ने जब यह आज्ञा सुनी तो दंग रह गये। एक हल्ला मच गया। यह कैसा न्याय? वे राज दरबार में पुकार करने गये। सरकार एक धर्मात्मा पुरुष पर इस तरह का कलंक! हम न्याय चाहते हैं हजारों आवाजें एक साथ आईं। सेठ ऐसा नहीं हो सकता यह अन्याय हम कभी बर्दाश्त नहीं करेंगे।

महाराज ने अत्यन्त मृदुता के साथ कहा—शान्त हो जाओ प्रजा जन। हमें इसका बहुत दुःख है कि यह साधु धर्मात्मा

आदमी इस तरह के पापाचरण में रत हुआ। हमने इन्हें सच सच बताने के लिये बहुत कुछ कहा किन्तु इन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। हमें मजबूरन यह आज्ञा देनी पड़ी। अब भी अगर ये अपनी सफाई पेश कर तो हम बड़ी खुशी से पुन विचार कर सकते हैं। आप लोग निश्चय मानिये कि आपका राजा कभी अन्याय नहीं कर सकता। अब भी अगर दूसरे का दोष साबित हो जाय तो हम उसी को दंड देंगे। चाहे वह दोषी स्वयं मैं ही क्यों न होऊं।

प्रजाजनों ने सेठ को बहुत समझाया अनुनय विनय की पर व्यर्थ, सेठ की मौन भंग न हुई।

लोगों ने कहा—दुनिया में किसी का विश्वास नहीं करना चाहिये यह दुनिया। बड़ी विचित्र है। भगवन्! तेरी लीला कौन समझ सकता है।

चौक में सेठ लाया गया। प्रजाजन हजारों की संख्या में उस पाखंडी धर्मात्मा की प्राणान्त लीला देखने आये। सब के मुख पर तिरस्कार नृत्य कर रहा था। किन्तु एकाएक यह कैसा परिवर्तन हुआ शूली का सिंहासन बन गया और ऊपर से पुष्प वर्षा होने लगी। लोग आश्चर्य चकित एक दूसरे की तरफ देखने लगे कि एक आवाज आई—चम्पा के पुरजनों तुम भाग्यवान् हो कि ऐसे धर्मात्मा का सत्संग तुम लोगों को मिला है। यह सेठजी पर झूठा कलंक था। इस तरह के सदाचारी पुरुष पर विपत्ति आई जान हमे उपस्थित होना पड़ा। सेठजी बिल्कुल

निर्दोष हैं। उन्होंने रानी के कलंक को बचाने के लिये अपने पर विपत्ति ले ली। धन्य है ऐसे त्यागी को।

इसी समय देखा राजा स्वयं उपस्थित होकर कह रहे हैं—सेठजी मुझे दुःख है। इसके लिए मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ। मुझे आप पर विश्वास था किन्तु आपके मौन रहने के कारण लाचार होकर मुझे यह आज्ञा देनी पड़ी। बोलिये अब आप क्या चाहते हैं ?

सेठ बोले—महाराज यह मेरा ही दोष था। आपने तो न्याय ही किया। अगर आप मुझे कुछ देना ही चाहते हैं तो माता पर किसी तरह का अभियोग उपस्थित न किया जाय।

राजा—वह थी तो शूली पर ही चढ़ाने योग्य किन्तु आपके कथनानुसार क्षमा करता हूं मैं वचनबद्ध हो चुका हूं।

कहते हैं चम्पा-वासियों ने सेठ की जय जयकार से आकाश गुंजा दिया। अब भी एक ध्वनि वहाँ गुंजती हुई सुनाई देती है। धन्य है सेठ सुदर्शन और धन्य उनका त्याग।

★

चांडाल श्रमण

उसका नाम था हरिकेशी। चाण्डाल कुल का वह बालक आवश्यकता से अधिक नटखट और बाचाल था। गांव से दूर नदी किनारे इस बालक का जन्म एक टूटे फूटे झोंपडे में हुआ था। गरीब मां बाप कैसे दिन गुजारते हैं इसकी चिन्ता करना उसका काम न था। दो समय खाने और रात को सोने के समय ही वह घर को याद करता था। बाकी का समय अपनी मित्र मंडली में बिताता। हां कभी कभी इस समय के सिवाय भी उसे हाजिर होना पड़ता था जब वह किसी लड़के के दो चार झापड़ जड़ देता या किसी का सिर फोड़ देता। पेशी के समय वह इधर उधर की बात बना विपक्षी को झूठा डाल देता और अगर इस पर भी छुटकारा नहीं मिलता तो बड़ी सफाई और फुर्ती से बाप की मार से अपने को बचा लेता। शिकायत करने वाले की तो उस दिन शामत ही आ जाती। घर वाले उसकी शिकायतों से परेशान थे। लड़के उसके कठोर शासन से।

एक दिन वह खेलता खेलता बस्ती से आगे निकल आया जहां धर्म की मोनोपोली ब्राह्मणों ने ली हुई थी। जिस बस्ती में उसकी परछाई भी असह्य थी। जिसके गमन मात्र से वेद पाठ

रुक पड़ते, आब हवा तक दूषित और अपवित्र हो जाती वहीं एक चाण्डाल बालक निर्भीक रूप से चहल कदमी करे यह कैसे सहन कर सकते थे भू-देवता। उन्होंने उसे जानवर की तरह पीटा। इस विपत्ति में उसके साथी भी उसे अकेला छोड़ दौड़ गये। फिर भी उसने डट कर मुकाबला किया किन्तु वह निशस्त्र अकेला बालक क्या कर सकता था इन बड़े बड़े सोटाधारी दानवों के सामने। उसके सिर में बड़ी चोट आई और वह बेहोश होकर गिर पड़ा। इस पर भी उनको संतोष न हुआ। उन्होंने उसके बाप से कहा —अगर अपना भला चाहता है तो इस दुष्ट लड़के को अपने झोंपड़े से बाहर निकाल दे। अभी, इसी समय। बेचारा बाप गिड़गिड़ाया जमीन पर नाक रगड़ी और बोला - माई बाप दया करो ऐसी दशा मे मैं इसे कहां निकालूं? जगह जगह से सिर फूट गया है। ठीक होजाने पर जैसी आज्ञा देंगे कर लूंगा किन्तु कौन सुनता था उसकी बात। लाचार उसे अपने आदेश दाताओं के आदेश को स्वीकार करना पड़ा उसे टाल कर रहता कहाँ।

पक्षियों का कलरव शान्त होगया। बसेरे के लिए सब अपने अपने घोंसलों में आगए। सूर्य देव अपनी आतप्त किरणों को समेट कर अस्त हो गए। शुभ्र शीतल चाँदनी के साथ चन्द्रोदय हुआ। ठंडी ठंडी हवा बहने लगी। हरिकेशी को कुछ कुछ होश आया। उसने धीरे धीरे अपने मूंदे हुए नेत्र खोले। चारों तरफ देखा। एक एक करके सारे दृश्य आंखों

में तैरने लगे। प्यास से उसका कठ सूख रहा था। उठने का प्रयत्न किया किन्तु उठ न सका। सिर से अभी तक रक्त बहता था। अंग अंग में असह्य पीड़ा थी। जिन्दगी में पहली बार वह इस तरह मजबूरन सोया था। आगे भी अनेक बार चोटें लगी थीं किन्तु तब उसकी मां उसको अपनी गोद में सुला कर उसकी सेवा करती थी। घाव जल्दी भर जाने के लिए उसे गुड़ का हलवा खिलाती थी। मां का ध्यान आते ही उस के स्वभाव के विपरीत उसकी आखों से बड़े बड़े आंसू टपकने लगे। उसे पश्चात्ताप हो रहा था। उसके खातिर उसके मा बाप प्रतिदिन लोगों के उलाहने सहते थे। बिरादरी के लोगों में नीचा देखते थे। आज भी उसके कारण उन्हें सब की जली कटी सुननी पड़ी और विवश उसे अपने से दूर करना पड़ा। किन्तु किसने उन्हें विवश किया? चन्द लोगों ने जिन्होंने धर्म को, ईश्वर को खरीद रखा है। जो अपने ढोंग की खातिर एक नादान बच्चे की जान तक ले सकते हैं, उसे अपने माता पिता से दूर तक कर सकते हैं। उसमें ऐसी क्या कमी है, जिसके कारण उसे दुनिया में रह कर भी दुनिया से दूर रहना पड़ता है। हाथ पैर नाक-कान सभी तो उसके उनके जैसे हैं। कुशलता में भी वह किसी से कम नहीं। आसमान से वे भी नहीं टपके, आसमान से वह भी नहीं टपका। उसने भी मां के उदर से जन्म लिया है। फिर उसे क्यों नहीं है उस बस्ती में जाने का अधिकार, उनके बच्चों के साथ खेलने का अधिकार? किन्तु कौन देता उसे इन सब बातों का उत्तर। उसके पैसे मंदिरों में चढ़ सकते

हैं, उसे भू देवता खुशी खुशी हजम कर सकते हैं किन्तु उसकी परछाई से भी परहेज है। रात भर वह इन्हीं विचारों में उलझा रहा, किन्तु समाधान कुछ न हो सका।

× × × ×

प्रभात हुआ। किसी तरह उठा जलाशय की तलाश करने के लिये। कुछ ही दूर चलने के बाद उसे एक नदी मिली जहाँ उसने जी भर कर पानी पिया। थोड़ी देर विश्राम करके वह उठा कि उसे विचार आया वह जायगा कहा? क्या वहीं जहाँ से वह निर्दयता के साथ निकाला गया है? नहीं नहीं वह वहां नहीं जायगा। जहां उसके सदृश मनुष्य का कोई स्थान नहीं तो फिर क्यों न इस नदी की प्रखरधारा में सदा के लिये शांत हो जाए। यह विचार उसे ठीक जचा। उसके लिये यही एक मात्र उपाय शेष रह गया जिसके द्वारा उसे हमेशा के लिये शान्ति मिल जाय। वह ज्योंही डूबने के लिए झुक कि उसे किसी के हाथ का स्पर्श अनुभव हुआ। उसने चौक कर पीछे देखा तो अपने को एक निर्ग्रन्थ साधु के समक्ष पाया। वह कुछ कहे इससे पहले ही साधु अपना सहज स्वाभाविक मृदुता से बोले विवेक से काम लो वत्स! आत्मघात करना सब से बड़ा पाप है। इससे शान्ति नहीं मिलेगी।

आप कौन होते हैं मुझे रोकने वाले? मैं अब जीना नहीं चाहता। क्या करूंगा मैं जीकर! मेरी किसी को आवश्यकता

नहीं। आप अभी तक नहीं जानते कि मैं कौन हूँ ? वर्ना आप भी मुझे नहीं रोकते। और न ही इतनी मृदुता से बात ही करते।

साधु मुसकराए उन्होंने कहा—वत्स शान्त हो जाओ। मैं जानता हूं कि तुम मानव हो। तुमने दुर्लभ मनुष्य जीवन पाया है। मैं इससे अधिक और कुछ जानना नहीं चाहता।

हरिकेशी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। इतनी मृदुता से तो उससे आज तक किसी ने बात नहीं की। कोई चमत्कारी और महान् पुरुष मालूम पड़ा। किन्तु फिर उसे विचार आया शायद इन्हें पता नहीं कि मैं एक चाण्डाल बालक हूँ। उसने कहा—महाराज, मैं एक चाण्डाल पुत्र हूं। शायद आप यह नहीं जानते ?

तुम दुखी और सताए हुए जान पड़ते हो ? तुम्हें क्या दुख है, निर्भीक होकर कहो।

हरिकेशी बोला—आपने ठीक कहा, मैं बहुत दुखी हूं। मुझे शान्ति चाहिये किन्तु कौन देगा मुझे शान्ति ? मैं अस्पृश्य हू, अन्त्यज सब की घृणा का पात्र। सब की गुलामी करना मेरा कर्त्तव्य है। जबान है किन्तु बोलने का अधिकार नहीं। फिर भी आप मुझे कहते हैं आत्मघात करना पाप है। आत्मघात न करूं तो और क्या करूं ? आप ही बताइये ?

नहीं वत्स ! ऐसा सोचना ही भूल है कि आत्मघात से दुःखों से छुटकारा मिल जाता है। इससे शान्ति कभी नहीं मिल सकती

यह शान्ति का मार्ग कतई नहीं। एक बार भले ही तुम स्थूल शरीर को त्याग कर समझ लो कि तुम मुक्त होगए। किन्तु आत्मा कभी नहीं मरती। कर्मों से कहीं नहीं बच सकते। फिर हीन कुल में जन्मने मात्र से कोई हीन नहीं होता। ये श्रेणियां तो मनुष्य ने अपनी सुविधा के लिए बना ली हैं। उच्च कुल में जन्म लेने मात्र से ही कोई उच्च नहीं हो जाता न ही इसमें कोई गौरव की ही बात है। वह तो आत्मशुद्धि और अच्छे कर्मों पर आधारित है। आत्म शुद्धि के लिए सब से उत्तम मार्ग साधु जीवन बिताना है।

हरिकेशी ने कहा-महाराज क्या मेरे जैसा आदमी भी इसे ग्रहण कर सकता है ?

साधु ने किसी अदृश्य शक्ति को नमस्कार करके कहा—महा प्रभु के धर्म राज्य में सब को समान स्थान है। वहां व्यक्ति और उसके कुल की पूजा नहीं होती, बल्कि उसके गुण और ज्ञान की पूजा होती है। मुक्ति के द्वार सब के लिए समान रूप से खुले हैं। भगवान् ने उच्च नीच गोत्र के सम्बन्ध में प्रवचन किया है।

" से असई उच्चा गोए असइ णीआ-गोए।
णो हीणे, णो अइरित्ते णोऽपीहए।
इइ संखाए को गोयवाई ? को माणवाई ?
कसि वा एगे गिज्झे ? तम्हा णो हरिसे णो कुप्पे "

अर्थात्-यही जीव अनेक बार उच्च गोत्र में जन्म ले चुका है

और अनेक बार नीच गोत्र में। इसलिए न कोई हीन है और न कोई ऊँच। अतः उच्च गोत्र आदि मदस्थानों की इच्छा भी न करनी चाहिए। इस बात पर विचार करने के बाद भी कौन अपने गोत्र का ढिंढोरा पीटेगा ?

और भी भगवान् ने फरमाया है—

कम्मुणा बम्भणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा॥

अर्थात् मनुष्य कर्म से ही ब्राह्मण होता है, कर्म से ही क्षत्रिय होता है, कर्म से ही वैश्य होता है, और शूद्र भी अपने कृत्य कर्मों से ही होता है।

हरिकेशी को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कोई महान् शक्ति उसमें प्रवेश कर रही है। उसका हृदय आनन्द से गद्गद् हो उठा। उसने मुनि के चरण युगल स्पर्श कर गुरु मंत्र देने का अनुरोध किया।

साधु ने अपनी विधि के अनुसार उसे दीक्षित किया, और कहा-आज से तुम समय मात्र का भी प्रमाद न करते हुए ज्ञान का वृद्धि और जन जन में फैले हुए इन घृणित विचारों से जनता को जागृत करो। अपनी आत्मा तथा दूसरों की आत्मा को उन्नति के पथ में लगाओ। दूसरों की भलाई अपना कर्तव्य समझ कर करो न कि किसी फल की आकांक्षा से। दूसरों के अवगुणों की तरफ लक्ष्य न करके स्वयं की आत्मा को टटोलो।

हरिकेशी ने विनय सहित गुरु के आदेश को शिरोधार्य करते हुए कहा-मैं यथाशक्ति गुरुदेव के आदेश का प्रतिपालन करूंगा।

नटखट चांडाल हरिकेशी का हृदय ज्ञान के आलोक से आलोकित हो उठा। उसने ब्राह्मणों के कुलीनतावाद से रौंदे हुए मानव समुदाय की त्रस्त वाणी और करुण क्रंदन को हृदयंगमन किया। श्रमण धर्म के साम्यवाद में मानव की मुक्ति का सदेश उसे सुन पड़ा। आत्म साधना के कठोर मार्ग का अवलंबन करके निर्लिप्त दृष्टि से उसने दो सीमान्तिक विचार धाराओं को तोला और अपने अनुभव को सही पाया। व्यवहार में, जगत में, सर्वत्र उसे अपना निर्णय ही मुक्ति का द्वार प्रतीत हुआ। उसने समाधि त्याग कर अपने विचारों का विजयतुर्य इतने जोर से फूंका कि पाखंड का का सिंहासन डोल उठा, यज्ञ कुंड में पशुओं की बलि देने वाले पुरोहितों के हाथ कांपने लगे, कुलीनतावाद के हिमायती ब्राह्मणों के पैरों के नीचे से भूमि खिसकने लगी। ब्राह्मणों, महर्षियों, मनीषियों ने आकर चांडाल बालक के उद्घोष को सुना और उसकी मनीषा को प्रणाम किया। साम्यवाद की वह पहली विजय थी, आज से सहस्रों वर्ष पूर्व। आज फिर दुनियां में उसी की विजय का निर्घोष सुन पड़ने लगा है।

× × ×

धर्म की रेखा

"आज इतनी सुस्ती से घोड़े को क्यों टहला रहे हो भैया? तुम तो जानते ही हो इसका ऐब। पीछे के घोड़े की टाप सुन लेने पर चलने का तो नाम ही नहीं लेता। चेष्टा करने पर भी उसकी वह बुरी आदत नहीं सुधरी। इसी पर तो मुझे इस पर क्रोध आता है। वर्ना इसकी जोड़ का घोड़ा अपनी नगरी में तो क्या दूर दूर तक नहीं है।" ये शब्द पुरुषवेषधारी वीर राजकुमारी सरस्वती के थे। पीछे वाला घुड़सवार था राजकुमार कालक। ये भाई बहन प्रायः नित्य ही प्रात काल नगरी के बाहर दूर घुड़सवारी के लिये जाया करते थे। यद्यपि विधाता के स्त्री ढांचे में सरस्वती का जन्म हुआ और व्याकरणाचार्यों के पोथों में स्त्रीलिंग में इसकी गणना होती थी। किन्तु उसको स्त्रीवेश बिल्कुल पसन्द न था। घर बाहर वह राजकुमार के वेश में ही रहती थी। लाज, भय किसे कहते हैं यह वह जानती ही न थी। स्वतंत्रता की पुजारिणी को प्राचीर की दीवारें भला कब अटका सकती थीं। महलों की वे रमणियां जिनके पैरों में मखमल पर चलने से फफोले हो जाते हैं, मक्खन खाने से जिनके छाले पड़ जाते हैं ऐसी सुकुमार नाजुक अंग वाली नारियां उसका आदर्श न थीं। उसका अधिकांश समय शास्त्रविद्या और घुड़ सवारी

से कालक कुमार के साथ करता था। राजकुमार की न तो मौन ही भंग हुई और न चाल में ही प्रगति। तब वह हठात् रुक गई। उसने फिर आग्रह के स्वर में पूछा—भैया आखिर इस मौन और चिन्ता का क्या कारण है ? और उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही उसने घोड़े की पीठ ठोक कर एक वृक्ष की टहनी से बांध दिया।

राजकुमार कालक ने भी राजकुमारी का अनुसरण करते हुए घोड़े की पीठ ठोक कर टहनी से बांधते हुए कहा—घोड़े की जात में एक न एक ऐब रहती ही है। मैंने तो आज तक ऐसा एक भी घोड़ा नहीं देखा जो बिल्कुल निर्दोष हो।

"किन्तु मैं चिन्ता का कारण जानना चाहती हूँ भैया ?"

"आज मैं यही सोच रहा हूं कि इस तरह स्वच्छन्द विचरना अब अधिक समय तक नहीं हो सकेगा। तुम्हारा जुदाई का मैं कैसे सह सकूंगा। यह पुरुष वेश सब की चर्चा का विषय बन रहा है। हम तुम अलग हो जायेंगे यह सोचते ही मेरा दिल दहल जाता है। एक गहरी सांस छोड़ते हुए कुमार बोले।

भैया आखिर यह घोर प्रतिबंध स्त्रियों के लिए ही क्यों है? ऐसी कौन सी कमी स्त्री जाति में है जिसके लिए परतंत्रता की बेड़ी उन्हीं के पैरों में पड़ती है ? उनका दुःख सुख सब कुछ एक मनुष्य के आश्रित रहता है। उनकी भावनाएं दबा दी

जाती है। सुहाग बिन्दु के लुप्त होते ही रहा सहा नारीत्व भी चला जाता है। घर की वह बहू जिसे गृहलक्ष्मी कहा जाता है राक्षसी बन जाती है। सारे अधिकार, समस्त सुख क्षण भर में छीन लिये जाते हैं। वह प्रत्यक्ष नरक का दु:ख यहीं देख लेती है। क्षण भर पहले का सुखद संसार भार रूप हो जाता है। अपना सब कुछ खोकर सर्वस्व समर्पण के पश्चात् मिलता है उन्हें दासत्व और उसके बाद घोर नारकीय जीवन। मैं ऐसा कभी नहीं सह सकती। मैं शादी नहीं करूंगी। ऐसा सुख यह परतंत्रता मुझे इच्छित नहीं। भैया इसके लिए तुम उदास न होओ। मैं कदापि तुमसे अलग नहीं होऊंगी। मुझे ऐसा नारीत्व नहीं चाहिये जो मेरे वीरत्व और मेरी स्वतन्त्रता का अपहरण करे।

राजकुमार ने गंभीर होकर कहा—किन्तु यह कैसे संभव हो सकता है? जिस जाति में तुमने जन्म लिया है उसके नियम तो तुम्हें पालन करने ही होंगे। देखती नहीं महाराज तथा माताजी आजकल कितने चिन्तित रहते हैं। कल ही माताजी कह रही थी—बेटा! अब सरस्वती का इस तरह स्वच्छन्द पुरुष वेश में घूमना अच्छा नहीं। उसे अब अन्तःपुर के नियम भी बताने आवश्यक हैं। मा का कर्त्तव्य मुझे बाध्य करता है कि उसे सफल गृहिणी बना दूं। मेरी भाव भंगी को देख कर उन्होंने कहा कि—बेटा! यह मैं अच्छी तरह जानती हूं कि इससे तुम्हें और उसे कम कष्ट न होगा। इससे अधिक वे कुछ न कह सकी।

राजकुमारी—तो इससे क्या मैं विवाह के लिए ....

राजकुमार ने बीच ही में कहा—तुम अपने लिए न करो तो न सही किन्तु राज्य रक्षा के लिए तो विवाह करना आवश्यक है। कौशल, वैशाली और कौशाम्बी आदि सब की मांग कैसे ठुकराई जा सकती है। इसका परिणाम ......

मैं जानती हूं आप चिन्ता न करें। बात टालने की गरज से उसने कहा—देखते हो भैया उधर वह धूल उड़ रही है चलिये देखें क्या मामला है।

जैसी इच्छा। चलो और दोनों ने लगाम संभाल कर एड़ दी, घोड़े हवा होगये। अभी अधिक दूर जा भी नहीं पाए थे कि नगरवासी मिल गये। पूछने पर मालूम हुआ कि जैन साधुओं का एक दल आया है जो नगरी के बाहर उद्यान में ठहरा हुआ है सब लोग उन्हीं के दर्शनार्थ जा रहे हैं।

कालक कुमार और कुमारी सरस्वती ने उद्यान में प्रवेश किया। चारों ओर शान्ति का वातावरण धर्म का चर्चा और आत्म-कल्याण की भावना।

कुमार और कुमारी प्रणाम करके आचार्य के सन्मुख जा बैठे। आचार्य की आंखें उठीं और एक हस्त आगे बढ़ा। कुमार ने अपने हृदय में किसी अवर्णनीय प्रेरणा का अनुभव किया।

बहुत सी शङ्काओं और जिज्ञासाओं को सुनने के बाद दिव्या-कृति आचार्य ने मुंह खोला। सभा स्तब्ध हो गई। आचार्य की वाणी ही चारों ओर गूंजने लगी। कुमार और कुमारी तो

बिल्कुल अपनी सुध बुध खो बैठे। लगभग एक घंटे तक आचार्य श्री की वाणी से अमृतधारा प्रवाहित होती रही।

राजकुमार शासक और राजकुमारी सरस्वती को आचार्य श्री के दर्शन से एक अपूर्व शान्ति मिली। उनके अपार तेज, मृदु और शान्तिदायक वाणी से उनका सारा शोक मिट गया। उनके उपदेश ने जहां उन्हें शान्ति प्रदान का वहां एक नई हलचल भी मचा दी। उनके हृदय में वैराग्य का उदय हो गया। उन्होंने अपनी इच्छा गुरुदेव को बताई। आचार्य ने दीक्षित करने की स्वीकृति दे दी। यहां से विदा लेकर वे वापिस राजमहल में आये। उस समय उनकी मुखाकृति देखते ही बनती थी, चेहरे पर संतोष और अंग अंग से प्रसन्नता टपक रही थी। भूले पथिक को मार्ग मिलने पर जितनी प्रसन्नता होती है उससे कहीं अधिक कुमार और कुमारी को हो रही था। आज उन्हें पता चला कि जीवन का ध्येय केवल मौज मजा और उदर पोषण ही नहीं है। उन्हें यही माग अपनी आत्मोन्नति के लिए श्रेष्ठ जँचा।

डरते डरते उन्होंने महाराज तथा महारानी से अपनी इच्छा प्रगट की।

महाराज तथा महारानी तो दंग रह गए। उन्होंने बड़े दुःख के साथ कहा बेटा! तुम यह क्या कह रहे हो? यह अवस्था वैरागी बनने की नहीं। अभी तो तुम्हारी अवस्था संसार के सुख भोगने की है। तुम्हारी और सरस्वती की शादी करनी है। यह मार्ग

तुम समझते हो उतना सरल नहीं। पग पग पर प्रकृति से लड़ाई। नहीं नहीं कुमार हमें बुढापे में इस तरह दुखी न करो। किन्तु दोनों अडिग रहे। उन्होंने कहा—

'जरा जाव न पीडेइ वाही जाव न वड्ढइ।
जाविंदिया न हायंति ताव धम्म समायरे।'

कुछ समय बाद अपनी योग्यता से साधु कालक कुमार संघ नायक बना दिये गये। राजकुमारी सरस्वती भी साध्वियों के बीच में रहने लगी। यद्यपि उनके क्षेत्र अलग अलग हो गये किन्तु यह सोच कर उन्हें सन्तोष था कि दोनों का आदर्श एक है, उद्देश्य एक है। दोनों एक ही लक्ष्य की तरफ बढ़ रहे हैं उन्होंने जिस मार्ग का अनुसरण किया उसमे अपने को एक दम डुबो दिया।

एक लम्बे समय के बाद अचानक भाई बहन उज्जयिनी में आचार्य और साध्वी के रूप में मिले। एक दिन महासाध्वी सरस्वती अपनी साध्वियों के साथ आचार्य श्री के दर्शनार्थ जा रही थी कि उसी नगरी के महाराज गर्दभिल्ल ने साध्वियों को देखा और देखते ही साध्वी सरस्वती पर मोहित होगए। यह सुन्दरी तो मेरे महल में रहने योग्य है। इस तरह का कष्ट-मय जीवन बिताने के लिए इनका जीवन नहीं बना। उसने तुरन्त अपने अनुचरों को आज्ञा दी – मेरे महलों में पहुंचने के पहले यह सुन्दरी मेरी सेवा में हाजिर की जाय।

किन्तु महाराज ....

बीच ही में महाराज ने गुस्से के साथ कहा—जानता हूं साध्वी है। किन्तु इस सुन्दरी का कष्ट मुझ से नहीं देखा जाता। तुम्हारा कर्त्तव्य सोचना नहीं आज्ञा पालन करना है। जाओ।

कुछ देर बाद लोगों ने बीच चौराहे पर साध्वी सरस्वती को महाराज के रथ पर उनके अनुचरों द्वारा ले जाते हुए देखा। नगरवासी कांप उठे। इतना बीभत्स दृश्य उन्होंने कभी नहीं देखा था। उनकी बुद्धि को जैसे लकवा मार गया। किसी की भी हिम्मत प्रतिकार करने की न हुई। वे मिट्टी के पुतलों की तरह निर्जीव से हो गए। इस तरह नगरवासियों के देखते देखते साध्वी निर्विघ्न महलों में पहुँचा दी गई। द्रौपदी के चीरहरण के समय भीष्म पितामह, कर्ण आदि महाशूरवीर जिस तरह बहरे और गूंगे बन गये थे वही हाल उज्जयिनी के नगर वासियों का था।

कालकाचार्य ने जब यह समाचार सुना तो दंग रह गए। उन का शरीर क्रोध से कांप उठा। आंखों से ज्वाला निकलने लगी उनका सोया हुआ क्षत्रियत्व जाग उठा। दोनों भुजाएं फड़कने लगी। क्या सब नगरवासी पुरुषत्वहीन हो गए। इस तरह का अन्याय खड़े खड़े कैसे सहते। यह उनकी बहन का अपमान नहीं किन्तु समस्त मानवता का अपमान है। वे इसे कभी सहन नहीं कर सकते। किन्तु प्रथम राजा को समझाना उन्होंने उचित समझा। उसी समय उन्होंने राजमार्ग की तरफ प्रस्थान किया। लोगों को आचार्य से यह आशा नहीं थी। उन्हें

कल्पना में भी यह ख्याल नहीं था कि अहिंसा का प्रतीक एक जैन आचार्य भी समय पर इतना उग्र रूप धारण कर सकता है। उन्होंने इसे मर्यादा के बाहर जाते समझा। किन्तु किसी की हिम्मत उन्हें रोकने की न हुई।

आचार्य ने राजा को बड़ी शांति के साथ समझाते हुए कहा राजन्! यह आपका धर्म नहीं। आप इस नगरी के स्वामी हैं, पिता हैं। आपका धर्म प्रजा का आदर्श है। जब आप स्वयं न्याय का गला घोंटने लगेंगे तो दूसरे की तो बात ही क्या। आप रक्षक हैं जब आप ही भक्षक बन जायेंगे तो रक्षा कौन करेगा? आपने एक क्षत्राणी का दूध पिया है। आप को यह दुराचार शोभा नहीं देता। आपने एक साध्वी का अपहरण किया जो सांसारिक सुखों को ठुकरा कर निकल गई। आप से मेरी नम्र प्रार्थना है कि आप साध्वी को छोड़ दें।

राजा गर्दभिल्ल ने मजाक उड़ाते हुए कहा—मुझे नीति पढ़ाने की आवश्यकता नहीं आचार्य! मैं अपनी नीति से अपरिचित नहीं हूं। अब आप जा सकते हैं।

आचार्य ने कहा—अगर आप अपनी नीति से परिचित होते तो मुझे यहां आने की जरूरत नहीं होती। एक साध्वी का अपहरण करके भी आप नीतिज्ञ होने की बात करते हैं। मैं आपसे बार बार कहता हूँ कि इस हठ को छोड़ दें। धारा की राजकुमारी का कुछ भी बिगड़ने के पहले उज्जयिनी का नाश

अनिवार्य हो जायगा ।

राजा ने हँसते हुए कहा - यह और भी अच्छी बात है कि वह एक राजकुमारी है । वहाँ पर उसे वे ही सुख मिलेंगे जैसे उस सरीखी अप्सरा को मिलने चाहिये ।

आचार्य ने क्रोध को दबाकर कहा—मुझे आपकी बुद्धि पर तरस आता है और क्रोध भी ।

राजा ने व्यंग से कहा —तो शस्त्र मंगवाऊं ?

आचार्य ने कहा- एक समय था जब मुझे भी इन पर आस्था थी । क्षत्री के लिए अस्त्र शस्त्र मंगवाने की आवश्यकता नहीं होती । आज भी ये हाथ कुछ कर सकते हैं किन्तु मेरा मुनि धर्म मुझे रोकता है, जहाँ तक शांति से काम हो सके मैं इस व्रत को त्याग कर शस्त्र उठाना नहीं चाहता । मैं नहीं चाहता कि व्यर्थ में निरपराधों का संहार हो मेरा कर्त्तव्य मुझे बारबार यह कहने को बाध्य करता है कि आप उस महासाध्वी को मुक्त कर दें । अन्यथा मैं यह दिखा दूंगा कि एक जैन आचार्य अन्याय के विपरीत शस्त्र उठाने में भी नहीं हिचकता है । वह जरूरत पड़ने पर धर्म के लिए शस्त्र भी उठा सकता है ।

राजा ने हँसते हुए कहा—अब आप जा सकते हैं साधु लोग आप की बाट देख रहे होंगे । वरना कहीं मेरे अनुचर आपका स्वागत न कर बैठें ।

आचार्य—यह मैं जानता हूं कि कामान्ध पुरुष को कुछ भी

नजर नहीं आता। अपने पैरों आप कुल्हाडी मारते भी वह नहीं हिचकता। विवेक नाम की वस्तु से वह किनारा कर जाता है। मैं आपसे फिर प्रार्थना करता हूं कि विवेक से काम लें आपको यह शोभा नहीं देता। आपको अविलम्ब साध्वी को सादर पहुंचा देना चाहिये। अन्यथा इसका परिणाम .....

राजा ने गुस्से मे पेर पटक कर कहा—और मैं भी अन्तिम बार कहता हूं कि आप अपना रास्ता लीजिये।

आचार्य ने भी और वहां ठहरना उचित नहीं समझा और वे भविष्य के परिणामों को सोचते सोचते चले गये।

× × × ×

किसी भी प्रकार जब राजा गर्दभिल्ल उस महासाध्वी को वश करने में सफल नहीं हुए तब उन्होंने तरह तरह के असह्य कष्ट देने शुरू किए किन्तु साध्वी तो चट्टान की तरह अटल थी। उसका धैर्य अपूर्व था। नये नये कष्टों से उसकी आत्मा और निखर उठी। ऐसी जिन्दगी से वह मौत अच्छी समझती थी।

कुछ समय बाद आचार्य को उज्जयिनी की रणभूमि में देखा। आचार्य के युद्ध कौशल से गर्दभिल्ल की सेना के छक्के छूट गये। उनकी तलवार जिधर पड़ती उधर नरमुंडों के ढेर ही ढेर नजर आते। धर्म की विजय हुई। आचार्य की सेना ने विजय पताका फहराते हुए नगर में प्रवेश किया। राजा गर्दभिल्ल दण्

की भिक्षा माग रहे थे। आचार्य ने इस अपराधी को भी क्षमा कर दिया। उनका दयालु हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने कहा उठो राजन्— मै राजपाट की आवश्यकता नहीं। हमें इससे क्या मतलब ? हमारी लड़ाई तो अन्याय से थी किसी व्यक्ति से नहीं। दुःख तो सिर्फ इतना है कि तुम्हारे अनाचार के कारण बिचारे हजारों निरपराधियों का खून हो गया। राजा को न्याय का उपदेश देकर सत्य पथ पर चलने के लिए कहा और खुद भी प्रायश्चित्त करके पुन साधुत्व ग्रहण कर लिया। उस अमर आत्मा के लिए आज भी लोगों के मस्तक श्रद्धा से झुक जाते हैं। उन्होंने अपनी साध्वी बहिन को ही नहीं बचाया किन्तु अपने आचार्यत्व का भी पूरी तरह से पालन किया। धन्य उस वीर को जिसने धर्म की पताका की शान रखी। सच्चे मार्ग का पथ प्रदर्शक बन कर सब को भटकने से बचाया।

★

अठारह

दण्ड

उठो मुनि अरणिक ! इस तरह विलाप करना तुम्हें शोभा नहीं देता। आज तुम्हारे मुनि पिता को स्वर्गस्थ हुए पूरे तीन दिन हो गए, किन्तु अभी तक तुमने कुछ भी नहीं खाया, खाते कहाँ से तीन दिनों से तो यहीं पड़े हो, भिक्षा लेने तो जाना ही होगा। इतना मोह तुम्हें शोभा नहीं देता। तुम जितेन्द्रिय कहलाते हो यह बिचार आते ही वह यन्त्रवत नगर की तरफ चल पड़ा। नगर में पहुंचते पहुचते मध्याह्न का समय हो गया। देह पसीने से तर हो गई। इस कड़ी धूप मे चलने के कारण पैरों में फफोले उभर आए, सारे पैर धूल से भर गए। कंठ सूखने लगा ओठों पर कठाई जम गई अब एक कदम भी आगे उनसे न चला गया पैर लड़खड़ाने लगे। सामने ही एक विशाल भवन दिखाई दिया। युवा मुनि ने इसी भवन के नीचे विश्राम करना ठीक समझा। उनको बड़ी जोर से प्यास लग रही थी किन्तु कुछ देर विश्राम करके ही भिक्षा के लिए जाना ठीक समझा। नाना विचारों में उलझे मुनि ससार की विरूपताओं पर सोच ही रहे थे कि एक सुन्दरी युवती ने आकर कहा—प्रभो ! मेरा नमस्कार स्वीकार हो।

मुनि ने आश्चर्य से ऊपर की तरफ देखते हुए कहा—दया का पालन करो बहन ।

युवती ने कहा—क्या आप विहार करके कहीं दूर से पधार रहे हैं । मुनि ने कहा—हां बहिन तीन दिन हुए मेरे साधु पिता स्वर्गस्थ हो गए अब मैं अकेला रह गया । कुछ दिन विश्राम करके अन्य मुनियों के पास जाऊगा ।

युवती ने पूछा तो क्या आप गोचरी (भिक्षाटन) कर चुके ?

नहीं देवि ! अभी तक मैं कहीं नहीं गया ।

युवती ने प्रसन्नता के साथ कहा—मेरे अहोभाग्य ! यह सौभाग्य मुझे ही मिलना चाहिये । अन्दर पधारें ।

मुनि ने उठते हुए कहा—हम साधुओं को तो कहीं से भिक्षा लेनी ही है । अगर निर्दोष आहार मिल गया तो मुझे लेने में इन्कार नहीं ।

मुनि की उठती जवानी और सौम्य चेहरे ने सुन्दरी को मोहित कर दिया । तड़फती वियोगिनी ने स्वयं के साथ एक संसार त्यागी को भ्रष्ट करने की ठानी । वर्षों की सोई आग मुनि को देख कर भड़क उठी । उसने अत्यन्त नम्र भाव से कहा—अगर कष्ट न हो तो दुपहरी यहीं बितायें ।

मुनि ने भी उस भयंकर दुपहरी में जाना उचित न समझ स्वीकृति दे दी । मुनि स्थान पूंज कर बैठे ही थे कि सुन्दरी ने

पैर दबाने का आग्रह किया ।

मुनि ने कहा—नहीं देवि ! हमें तुम्हारी सेवा की आवश्यकता नहीं । हम अपना कार्य गृहस्थ से नहीं करवाते । फिर स्त्री स्पर्श तो हम साधुओं के लिए बिल्कुल वर्जित है ।

मनचली युवती ने मचलते हुए कहा—तो ऐसा वेश छोड़ो साधु । यह बड़े बुढ़ों का वेश तुम्हें शोभा नहीं देता है । इस तरह यह जवानी व्यर्थ में गंवाने के लिए नहीं । तुम्हारा कोमल शरीर क्या इस लायक है ? देखो पैरो में फाले हो गए हैं, जगह जगह से रुधिर बह रहा है । अब इस ढोंग को मैं और अधिक बर्दास्त नहीं कर सकती । चलिए अन्दर, महल के अन्दर चलिये । यह दासी आपकी हर सेवा करने को अपना अहोभाग्य समझेगी ।

युवा मुनि का सर चकराने लगा । यह क्या वे कहाँ फस गए । उनकी आंखों में लाली दौड़ आई और मुह क्रोध से तमतमा उठा । उन्होंने कहा—बस करो हम साधु हैं ब्रह्मचारी हैं । हमारे लिए इस तरह सुनना भी पाप है । मैंने तुम्हें एक सती स्त्री समझा था ।

रमणी ने साधु की बात पर ध्यान न देते हुए ढीठ स्वर में सहास्य कहा—अन्दर पधारिये कुमार और कुमार कुछ बोले इससे पहले ही उनका हाथ अपनी नाजुक अंगुलियों से पकड़ कर अन्दर ले गई । अब साधु में इतनी शक्ति कहां रही कि उसका प्रतिवार करते । क्रोध की जगह प्रेम का स्रोत फूट पड़ा । उनकी

समस्त शक्ति, विवेक उस सुन्दरी के मृगनयनों में उलझ गया। उनको अपना साधुत्व मिथ्या तुच्छ जचने लगा। उन्हे अपने पर घृणा भी होने लगी। सचमुच यह भी कोई जिन्दगी है। इस कड़ी धूप मे भिक्षा के लिए घर घर भटकना। झूठ मूठ परेशानी उठाने के अलावा और कुछ नहीं। इस सुन्दरी का आग्रह क्या कम है। जो बातें ससार छोडते समय माया जाल लगती थीं आज वे ही फिर सत्य जंचने लगीं। सुन्दर लगने लगीं। सुन्दरी की मीठी मीठी बातों ने उनको पतन की ओर बडी आसानी से धकेल दिया।

मुनि अब अपने दल के साधुओं को कैसे मिलते। उनके दल के साधुओं ने बहुत खोज की किन्तु वे अरणिक को न ढूंढ सके। जब यह समाचार मुनि अरणिक की साध्वी माता को मालूम हुआ जो कि जीवन को आत्मसाधना में लगी हुई थी। बेटे के गुम हो जाने से उसे बहुत चिन्ता हुई। मोह ने विजय पाई। मां का हृदय विकल हो उठा। उसने रात दिन अरणिक की खोज में लगा दिया। किन्तु कहीं भी उसका पता न चला। फिर भी उसने हिम्मत नहीं त्यागी। उसे पूर्ण विश्वास था एक न एक दिन उसकी मेहनत अवश्य सफल होगी। वह जहां भी जाता अरणिक के विषय में पूछती। उसका हुलिया बताती और नकारात्मक उत्तर पाकर निराश लौट पड़ती।

मुनि अरणिक जो अब मुनि न रहे थे एक दिन सुन्दरी के साथ वातायन में बैठे वार्तालाप कर रहे थे। यहाँ से वे सड़क

का दृश्य आसानी से देख सकते थे। अक्सर वे यहीं बैठे बैठे नगर की शोभा देखा करते थे। आज भी सुन्दरी के साथ प्रेम पूर्ण वार्तालाप चल रहा था कि एकाएक उनकी दृष्टि एक बुढ़िया पर पड़ी जो कि भयंकर गर्मी से विह्वल हो रही थी जिसका अंग अग बुढ़ापे के कारण कांप रहा था। तत्काल उसके सामने वर्षों पहले का चित्र खिच गया, उसे ध्यान आया एक दिन वह भी इसी अवस्था में था। उसकी भी यही दशा हो रही थी। उसका हृदय द्रवित हो उठा उसने उसी समय उस बुढिया को बुलाया तथा पूछा—मां तुम्हें क्या दुःख है ? इस धूप में कहाँ जा रही हो ? क्या तुम्हारे कोई लडका आदि देख भाल करने वाला नहीं है ?

बुढ़िया चित्रलिखित सी रह गयी। उसने बड़े प्रेम के साथ कहा एक बार फिर से कहो बेटा मां। आज वर्षों बाद यह मधुर शब्द मैंने सुना है जिसको सुनने के लिये मैं तरस रही थी बोलो बेटा एक बार और कहो मां, मेरा बेटा भी कभी इसी मृदुता के साथ मुझे पुकारा करता था किन्तु आज न जाने कहाँ चला गया वह।

अरणिक ने कुछ व्यग्रता के साथ पूछा—क्या तुम्हारा लड़का खो गया ? कितना बड़ा था, कैसा था ? कैसे खो गया ? क्या नाम था उसका ?

बुढिया ने एक गहरी निःश्वास छोड़ते हुए कहा—यह सब पूछ

कर क्या करोगे बेटा, ऐसा एक स्थान भी नहीं जहाँ यह बुढिया नहीं पहुची किन्तु दुर्भाग्य उसका अभी तक पता नहीं चला। न जाने वह कहाँ और किस अवस्था में होगा कहते कहते बुढिया रो पडी।

अरणिक ने सानुभूति पूर्ण स्वर में कहा— किन्तु बताने में तो कुछ हज नहीं सम्भव है मैं आपकी कुछ मदद कर सकूं।

बुढिया ने कहा—हाँ तुम ठीक कहते हो बेटा शायद तुम्हारे ही सयोग से मिल जाय। एक दिन उसने वीर प्रभु की वाणी सुनी और उसे वैराग्य हो गया। हमने कितना समझाया किन्तु वह न माना और उसने दीक्षा ले ली। बाद में मैंने और उसके पिता ने भी उसी मार्ग का अनुसरण किया। उसके पिता का स्वर्गवास होगया किन्तु मैंने जब अन्य साधुओं से सुना कि उसका कहीं पता नहीं चला तो बेटा मेरा हृदय नहीं माना मैं साधुपन को छोड़ कर उसे ढूढती फिरती हूँ किन्तु उसका अभी तक कहीं भी पता न चला।

यह कथा तो मेरे जीवन से बिल्कुल मिलती जुलती है। उसका नाम क्या था अत्यन्त अधीरता से अरणिक ने पूछा।

उसका नाम अरणिक था, बेटा! बुढिया ने अरणिक को गौर से देखते हुए कहा।

अरणिक ने मां मां कहते हुए बुढिया के चरण पकड लिये और बताया-मां मैं ही तुम्हारा वह अधम और पापी पुत्र हूं।

मां मुझे दंड दो। मैंने तुम्हे बहुत दुखी किया है।

अरणिक की बुढ़ी मां आनन्द के सागर में डूब कर बेसुध हो गई। होश आने पर उसने मुसकराते हुए कहा—अवश्य इसका दंड मैं तुम्हें दूगी और मैं भी लूगी। चलो आओ मेरे साथ। अरणिक एक बालक की तरह मा के साथ हो गया।

सुन्दरी देखती ही रह गई उसने पुकारते हुए कहा—कुमार ! जाते कहाँ हो ?

वहाँ मुझे जाना चाहए देवि ! मैंने जो तुम्हारे प्रति अन्याय किया है उसका प्रायश्चित्त करने। मेरे जाने में ही हम दोनों का कल्याण है।

कुछ दिनों बाद लोगों ने सुना कि अरणिक की मा ने अरणिक को दंड स्वरूप पुनः साधुत्व अंगीकार करने के लिए कहा और उसने भी सहर्ष माता की आज्ञा को शिरोधार्य किया। कालान्तर में वह एक यशस्वी तपस्वी के रूप में संसार में विख्यात हुआ।

★

उन्नीस

उद्बोधन

श्रावस्ती में आचार्य इन्द्रदत्त का आश्रम था। यहीं वे रहते और अपने शिष्यों को विद्याध्ययन करवाते थे। सरस्वती की इन पर पूर्ण कृपा थी किन्तु लक्ष्मी उतनी ही अप्रसन्न थी। शिष्यों से उन्हें प्रतिदान में आत्म संतोष के अतिरिक्त मिलते थे पुण्य, सेवा और भक्ति। इतने से वे सतुष्ट थे, प्रसन्न थे। किन्तु इससे ब्राह्मणी का तो कार्य नहीं चल सकता था।

एक दिन आचार्य इन्द्रदत्त एक विशाल वट वृक्ष की छाया तले शिष्यों से ज्ञान चर्चा कर रहे थे। इसी समय कपिल ने आकर कहा—गुरुदेव के चरणों में मेरा नमस्कार स्वीकार हो।

आचार्य—वत्स! चिरायु हो। तुम यहाँ के तो नहीं मालूम पड़ते, क्या नाम है तुम्हारा?

कपिल ने विनम्र स्वर में कहा—मैं राजपंडित काश्यप का पुत्र कौशाम्बी से आ रहा हूं। ओ हो! तुम मेरे सहपाठी बाल मित्र काश्यप के पुत्र हो! आओ बेटा, इधर आओ। तुम्हें देख कर बड़ी प्रसन्नता हुई। बंधु काश्यप कुशल तो हैं? मेरे लिये क्या आदेश लाये हो?

वे तो अब इस समार में नहीं हैं गुरुदेव ।

क्या मेरा बन्धु अब इस संसार में नहीं रहा कहते कहते आचार्य के उज्ज्वल और गभीर चहरे पर शोक की कालिमा छा गई ।

पिताजी तो हमें अनाथ करके चले गये । माताजी ने मुझे आपकी सेवा में भेजा है ।

यह उनकी मेरे प्रति कृपा है । तुम इस आश्रम को अपना घर समझो वत्स ! अभी तुम थके हुए होओगे जाकर विश्राम करो। बाद में मैं तुम्हारे अध्ययन की व्यवस्था कर दूंगा ।

× × × ×

'बेटा ! ये हैं तुम्हारी आचार्याणी, और यह है मेरे बालबधु काश्यप का पुत्र कपिल । अब यह यहीं रह कर विद्याध्ययन करेगा।' एक दूसरे का परिचय कराते हुए आचार्य ने कहा ।

आचार्याणी—किन्तु आपको तो मालूम ही है कि घर में · ···

हां ठीक है मैं कुछ प्रबन्ध कर दूंगा आचार्य ने बीच ही में उत्तर दिया ।

आचार्य विचार में पड़ गए । ईश्वर ने उन्हें अपार विद्या बुद्धि दी । सम्मान सत्कार दिया किन्तु दिया नहीं तो सिर्फ पैसा । वे दुरूह से दुरूह समस्याओं का समाधान चुटकियों में कर सकते थे । बड़े बड़े ग्रन्थ लिख सकते थे । गृहस्थी के नोन तेल लकड़ी का प्रबंध उनके लिए एक महान जटिल प्रश्न था । उस प्रश्न

का हल कर सकना ही जैसे उनके लिए दुनिया का सब से कठिन काम हो।

कोई ऐसा जादू जानते कि रोटी दाल का पात्र कभी खाली नहीं होता, तेल के अभाव में उनका अध्ययन न रुकता तो कितना अच्छा होता। इन्हीं सब बातों पर वे विचार कर रहे थे। आज यह कोई नई बात नहीं थी, कोई न कोई शिष्य उनके यहाँ विद्याध्ययन के लिए आ ही जाता। ब्राह्मणी के स्वभाव को जानते हुए भी वे किसी को ना नहीं कर सकते थे, फिर यह तो उन्हीं के बालबधु का पुत्र था। सूर्यास्त हुआ। चन्द्र निकला, तारे चमके किन्तु आचार्य की गुत्थी न सुलझी। सारी रात यों ही बिता दी। भोर हुआ आचार्य स्नान के लिए नदी की तरफ गये। वहीं पर सेठ शालिभद्र मिल गये। आचार्य के उदास चहरे को देख कर सेठजी ने पूछा—आज मैं आचार्यदेव को कुछ चिन्तित देख रहा हूं। क्या बात है? आचार्य ने अपनी कठिनाई बताई। सेठजी ने कहा—इसकी चिन्ता आप क्यो करते हैं? उसके रहने खाने का प्रबन्ध मेरे यहाँ हो जायगा। सेठजी ने आचार्य को एक बहुत बड़ी चिन्ता से मुक्त कर दिया। अब आचार्य कपिल को पढ़ाने लगे। कपिल की बुद्धि प्रखर थी। कुछ ही दिनों में उसने अच्छी प्रगति कर ली। आचार्य उस पर बहुत प्रसन्न थे।

× × × ×

शालिभद्र की दासीपुत्री चंपा के रूप का कौन वर्णन करे। चांदनी सी श्वेत, लता सी कोमल, समुद्र की तरंगों सी चंचल, चपला सी चपल। कपिल की इससे खूब पटती थी। साथ साथ खेलते, साथ साथ घूमते। धीरे धीरे जवानी ने पग रखा। दोनों एक दूसरे के निकट आ गए इतने अधिक कि जाति की, समाज की सीमा ही लांघ गये। अध्ययन में कपिल का दिल नहीं लगता। आश्रम उसे कारागार लगने लगा। उसकी आराध्य देवी अब विद्या नहीं किन्तु चम्पा हो गई।

आचार्य की तीक्ष्ण दृष्टि से यह सब छिपा न रहा। उन्हें इससे अत्यन्त दुःख हुआ। उन्होंने कई बार इसके लिए कपिल को समझाया किन्तु सब कुछ बेकार गया। एक दिन आचार्य ने अत्यन्त क्षुब्ध होकर कहा—वत्स! तुम्हारी माता ने तुम्हें मेरे पास विद्याध्ययन के लिए भेजा था। जब वे यह सब सुनेगी तो उन्हें कितना दुःख होगा। तुम मेरे और अपने कुल पर कालिख न लगाओ। अब भी समय है कि तुम सुधर जाओ। वर्ना आश्रम् की पवित्र भूमि में तुम्हारे जैसे अधम के लिए कोई स्थान नहीं।

जवानी की अल्हड़ता में वह अपनी बुद्धि खो चुका था। उसने कहा—जैसी गुरुदेव की आज्ञा। अब मैं कभी आश्रम की भूमि को अपवित्र करने नहीं आऊंगा।

कपिल आश्रम को त्याग कर चम्पा के साथ रहने लगा। चम्पा के पास जो कुछ था उससे कुछ दिन तो बड़े मजे से कट गये आखिर एक दिन जिस की संभावना थी वही हुआ। चम्पा ने कहा—अब तो मेरे पास कुछ नहीं है, जो कुछ था दोनों के पेट में पहुंच गया। इस तरह पड़े रहने से तो काम नहीं चलेगा कपिल को यह वाक्य तीर सा लगा। पर करता क्या। उसने कई स्थानों पर चेष्टा की कि उसे अध्यापन का कार्य मिल जाय किन्तु कोई भी गृहस्थ ऐसे आदमी को अपने बच्चों को नहीं सौंपना चाहता था जो ब्राह्मण होकर दासी-पुत्री से ब्याहा हो। वह चिन्ता सागर में डूब गया।

चम्पा ने जब कपिल का दीनता भरा चहरा देखा तो उसका हृदय उमड़ आया। उसने कहा—आराध्य! आप चिन्ता न करें। एक धनी सेठ उस ब्राह्मण को दो मासे स्वर्ण प्रदान करते हैं जो उन्हें सर्व प्रथम आशीर्वाद देता है। आप सब से पहले उसके समीप पहुंचने का यत्न कीजिए।

कपिल ने प्रसन्न हो कर कहा—मैं अवश्य जाऊंगा। सब से पहले। उस दिन फिर कपिल को नींद नहीं आई। अर्द्धरात्रि में ही चल पड़ा। कहीं उसे नींद आजाए और कोई उससे पहले पहुँच जाए तो। अर्द्धरात्रि में ही वह चल पड़ा और संदेह में पकड़ कर बंद कर दिया गया।

प्रातः काल जब न्याय का घंटा बजा। उसकी पुकार हुई।

उसे अपनी सफाई देने के लिए कहा गया। उसने संक्षेप में अपनी सारी कहानी सुना दी। सुन कर राजा को बड़ी दया आई। उन्होंने कहा— ब्राह्मण ! तुम जो कुछ मांगना चाहते हो, मांग लो।

कपिल का हृदय खुशी से नाच उठा। राजा ने अनुग्रह किया है तो फिर क्या मांगू ? कुछ सोच कर ही मांगना चाहिए। वह बोला— यदि महाराज की आज्ञा हो तो सोच कर मांगूगा।

राजा मुस्कराए उन्होंने कहा—इधर वाटिका में बैठ कर सोच लो पर अधिक समय न लगाना।

तो फिर राजा से क्या मांगू दो मासे सोना जिसके लिए घर से चला था किन्तु नहीं इतने से क्या होगा दो ही दिन में फिर वही दरिद्रता। जीर्ण जीर्ण हो गए हैं उसकी प्रिया के वस्त्र। अंग पर एक भी आभूषण नहीं इतना मांगू जिससे यह सब हो जाय तो सो मुद्रा मांग लूं पर इससे क्या होगा गहने कपड़े बन जायेंगे पर मकान आदि तो फिर हजार मुद्रा मांग लू घर भी बन जायगा गहने कपड़े भी बन जायेंगे किन्तु फिर उसके लिए पालकी भी तो चाहिए सेवा के लिए सेविका भी चाहिए और फिर इतनी मुद्रा चलेगी भी कितने दिन फिर वही हाल हो जायगा। मांगने में इतनी कंजूसी क्यों करूं ? महाराज प्रसन्न हुए हैं इनके यहां क्या कमी है तो फिर एक करोड़ मांग लूं नहीं राज्य ही क्यों न मांग लूं। राज्य ! जैसे उसके किसी ने जोर से तमाचा लगाया।

सारी कल्पना हवा हो गई । बुद्धि ने पलटा खाया वह घर से दो माशा सोने के लिए निकला था। कहां दो माशा स्वर्ण और कहां राज्य ! जिसने उपकार किया वरदान दिया उसी का राज्य। तृष्णा ने उसे इतना गिरा दिया । जो सागर का तरह अपार है, अनन्त है । जिसमें सतोष नहीं चैन नहीं । वह विद्याध्ययन के लिए आया था कहां इस माया जाल के प्रपंच में फंस गया । धिक्कार है मुझे। उसे ऐसा लगा जैसे वह अपनी ही घृणा में डूब जायगा । धीरे धीरे वह वहां से चला ।

राजा ने पूछा—क्यों ब्राह्मण ! क्या सोचा ?

कपिल का सिर लज्जा से झुक रहा था । आत्मग्लानि से मलिन हो रहा था । वह बोला—राजन् ! अब मुझे कुछ नहीं चाहिए । आज मैंने तृष्णा की विचित्रता देख ली । कहां दो माशा स्वर्ण और कहां करोड़ मुद्रा ? करोड़ मुद्रा से भी सतोष न हुआ। सोचने लगा राज्य ही क्यों न मांग लूं ? कैसी विचित्रता है। अब तो मुझे न करोड़ चाहिए न और कुछ। लाख और राख में मुझे कुछ अंतर नहीं लगता । मैं अशान्ति से ऊब उठा हूँ । अब तो मेरा मार्ग दूसरा ही होगा और वह अकेला वन की तरफ चल दिया।

✱

बीस

सत्यव्रती

सूर्य अस्ताचल की ओर तीव्र गति से बढ़ा चला आ रहा था। अपने दुश्मन को रण छोड़ कर जाते देख अमावस्या ने एक बड़े जोर के अट्टहास के साथ विजय दुंदुभि बजा दी। उसकी काली काली रश्मियां पृथ्वी के चहुँ ओर फैल गईं। भयंकर गर्जन के साथ मेघमालाएं घुमड़ने लगीं। इस अंधकारमय समय में एक अपूर्व सुन्दरी उस निर्जन बन की ओर बढ़ रही थी। जिस मार्ग से जाते हुए अच्छे अच्छे वीरों के भी दिल दहल जाय। सुन्दरी का ध्यान प्रकृति की भयकरता की तरफ नहीं था। वह तो पग पग पर अपनी चाल को और तेज करती हुई बढ़ी चली जा रही थी। उसके कंधे पर एक सुकुमार बालक का मृत शरीर पड़ा था। उसके नयनों से आंसुओं की बाढ़ उमड़ पड़ी थी। उसके अस्फुट ओठों से अत्यन्त करुणापूर्ण स्वर से निकल रहा था—बेटा रोहित! बेटा रोहित! एक बार तो बोलो। तुम्हारी मां कितनी विकल हो रही है। सिर्फ एक बार आंख खोल कर देखो। केवल एक बार फिर मां कह दो। पहले तो कभी इस तरह अपनी मां को दुखी देख कर चुप नहीं रहते थे। फिर आज कैसे चुपचाप मां का कष्ट देख रहे हो, बोलो।

हा ईश्वर! तुमने यह क्या कर डाला। मुझ दुखिया का इतना

भी दुःख तुमसे नहीं देखा गया। मेरी ज्योति तुमने क्यों बुझा दी ? क्या तुम्हें मुझ हतभागिनी से यही करना था। मुझे और कुछ नहीं चाहिये मेरा प्राण मुझे लौटा दो। उसके हृदय विदारक करुण चीत्कार से सारे वन के पशु पक्षी और पत्थर तक कांप उठे किन्तु नहीं पसीजा वह जो दुलार में पला था। पसीजता कैसे वह तो क्रूर काल के चक्र में फस चुका था उसका ग्रास बन चुका था। अजगर से विशाल भयंकर काले सांप ने उसे काट जो लिया था। कितना साहसी था वह मां की क्षुधा शांत करने के लिए अपनी जान की बाजी लगा कर वृक्ष पर चढ़ जाता था। किन्तु क्रूर सांप को दया कहाँ उसने तो अपना आघात कर ही दिया उस मासूम बच्चे पर। इसीलिए उसकी दुखिया मां इतनी भयंकर रात्रि में भी अपने मालिक का काम निपटा कर अपने बेटे का दाह संस्कार करने चली। दासी को इतना अधिकार भी कहाँ कि वह काम के समय पर अपने जिगर का दाह संस्कार भी कर सके। उसे अब किसी का डर नहीं था किसी कि परवाह नहीं थी इससे अधिक भयकर विपत्ति उसके लिए और क्या हो सकती है। आंधी की अल्हड़ता सी अविचल गति से वह बढ़ी चली जा रही थी। बीच रास्ते में क्रूर काल की उछाली हुई खोपड़ियां अवशेष नर कंकाल मानों काल ने अपने खेलने के लिए गिल्ली डंडे रख छोड़े हों।

उस निर्जन स्थान में उसने चारों तरफ मदद के लिए एक आशा भरी दृष्टि फेंकी। किन्तु उसे निर्जीव ठूंठों के सिवाय

कुछ भी दिखाई नहीं दिया। शनैः शनैः उसका धैर्य छूटने लगा कि उसे अर्द्धदग्ध चिता के प्रकाश में एक विशालकाय मनुष्य दिखाई दिया। शरीर पर एक धोती और हाथ में एक लट्ठ। उसकी छाती धड़कने लगी। उसके सारे शरीर को जैसे लकवा मार गया। वह जहाँ की तहाँ स्तम्भ की तरह खड़ी की खड़ी रह गई।

लट्ठधारी पुरुष ने जब इस भयङ्कर रात्रि में एक स्त्री को देखा तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने पास आकर कहा इस भयंकर अंधेरी रात मे कहाँ जा रही हो वनदेवि ? क्या तुम्हें भय नहीं लगता। यह बालक कौन है ? इसे कहां ले जा रही हो ?

उत्तर में उस करुणा की मूर्ति ने रुद्धकंठ से अति ही क्षीण स्वर में कहा—तुम कौन हो मुझे पूछने वाले ? मुझ अभागिनी का सहायक भी मुझ से रुष्ट है वह भी मेरी सुध नहीं लेता फिर तुम तो उसी निर्दय जाति के।

उस बलिष्ठ पुरुष ने उसकी बात का खयाल न करते हुए सहानुभूतिपूर्ण स्वर में कहा—तुम्हारे कहने से पता चलता है कि तुम किसी क्रूर द्वारा सताई गई हो। अगर तुम्हें कुछ आपत्ति न हो तो बताओ तुम कौन हो ? तुम्हें क्या तकलीफ है ? शायद मैं तुम्हारे कुछ काम आ सकूं।

भद्र ! तुम बड़े अच्छे और दयालु मालूम पड़ते हो। मैं बहुत

विपत्ति में फंसी हुई हूं। मेरे एक मात्र पुत्र को सांप ने काट लिया। दया करके तुम इसका विष उतार दो। जन्म भर तक मैं तुम्हारा यह अहसान न भूलूंगी यही मेरा एक सहारा है आसुओं को पोंछती हुई सुन्दरी बोली।

पुरुष को अब समझते देर नहीं लगी। उसने बालक के कोमल हाथ की नाड़ी टटोली। हृदय की धड़कन देखी। एक निराशा भरी गहरी निश्वास छोड़ते हुए उसने कहा-देवि! इसका मोह छोड़ दो। विष अपना असर कर चुका। अब कुछ नहीं हो सकता। अब इसमें कुछ भी शेष नहीं। कभी का यह काल का शिकार बन चुका। रात बहुत हो चुकी मुझे भय है कहीं पानी न बरसने लगे। जितनी जल्दी हो सके इसका दाह संस्कार कर दो। बेचारा सुकुमार बालक कच्ची उम्र में ही उठ गया। राजकुमार सा मुंह है इसका। पर काल के आगे किसी का वश नहीं। यहीं पर आकर मनुष्य की हिम्मत टूट जाती है सहानुभूति पूर्ण स्वर में पुरुष बोला।

ऐसा न कहिये। इस का विष उतार दीजिये। यह जरूर अच्छा हो जायगा। आप ·······।

पुरुष ने बीच ही में बात काटते हुए कहा—देवि अब झूठी आशा से क्या लाभ? अब तो दाह सस्कार में शीघ्रता करो।

ठीक ही है आप क्यों झूठ बोलने लगे जैसा उचित समझें

आप ही इसका दाह संस्कार कर दीजिये । सचमुच आप बड़े दयालु हैं । अपने को संयत करते हुए स्त्री ने कहा ।

इसमें दया की क्या बात है मेरा तो यह काम ही है । श्मशान कर निकालो ! मैं अभी दाह संस्कार कर देता हूँ । हाथ फैलाते हुए पुरुष ने कहा ।

श्मशान कर ! मेरे पास तो कुछ भी नहीं है चुकाने को घबराहट के साथ उसने कहा ।

अरे ! तुम नहीं जानती यहाँ पर यह नियम है कि दाह संस्कार में जो लकड़ी लगती है उसके लिए कर देना पड़ता है ।

किन्तु मेरे पास तो कुछ भी नहीं । पैसा होता तो बि॰ा कफन के मेरा बेटा रहता । मुझ पर दया करो ।

तब तो मैं बिल्कुल असमर्थ हूं देवि ! अपने मालिक की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता । पर क्या तुम्हारे कोई भी नहीं । पति, भाई, पिता क्या-किन्तु तुम्हारी मांग तो भरी हुई है । क्या वह इतना निष्ठुर है ।

ऐसा न कहो ऐसा न कहो । सब कुछ था सब कुछ है किन्तु ‥ ‥ पर तुम क्या मुझ पर इतनी सी दया भी नहीं कर सकते । पैसे का नाम सुनते ही दया कहाँ भाग गई तुम्हारी कुछ उत्तेजित होते हुए स्त्री ने कहा ।

देवि मुझे दुःख है कि इस असहाय अवस्था में भी मैं तुम्हारी

मदद नहीं कर सकता। मैं कोरी सहानुभूति बताने वाला ही नहीं किन्तु क्या करूं बिका हुआ दास हूँ, गुलाम हूँ। मेरा भी मुझ पर अधिकार नहीं। देवी! मुझे क्षमा करो। दया के नाम पर कर्तव्य का बलिदान नहीं कर सकता। अपने उत्तरदायित्व से विमुख नहीं हो सकता। बिना कर लिये मैं तुम्हारे इस बालक का संस्कार न कर सकूंगा। अच्छा तो चलूं। मालिक के काम में कुछ हर्ज न हो।

क्या कहा, बिके हुए दास कहीं आप ही ?

कौन,तारा मेरी तारा ! क्या मेरा यह मेरा ही राजा बेटा ? कैसे क्या हुआ इस बालक को तारा के कंधे से लेते हुए हरिश्चन्द्र बोले।

हां नाथ ! आपका राजा बेटा ही आज हमें इस तरह दुखी करके बिलखता छोड़ गया। लड़कों के साथ बन में गया था वहीं पर सर्प ने काट लिया।

क्रूर विधाता ! क्या तुमसे हमारा यह सुख भी नहीं देखा गया? राज्य त्याग का हमें दुःख नहीं किन्तु हमारे जीवन को हमसे क्यों छीन लिया। इसके पहले हमें ही क्यों न उठा लिया। इसकी भोली भाली ....।

नाथ ! अब विलाप करने से क्या लाभ जल्दी से दाह संस्कार करके........ ......।

तुम ठीक कहती हो रानी। किन्तु बिना कर मैं दाह संस्कार

कैसे कर सकूंगा । अपने को सभालते हुए हरिश्चन्द्र बोले ।

'कर' दूं। क्या अब भी तुम्हें मेरा विश्वास नहीं। मेरे पास क्या है कि मैं तुम्हें कर दूं। क्या अब भी तुम्हें कर चाहिये। क्या तुम इसके पिता नहीं ? तुम्हारा कुछ भी कर्त्तव्य नहीं कहते कहते तारा के आंसुओं का वेग फिर बढ़ गया।

क्या मैं इसे कर बिना लिए जला दूं। किन्तु नहीं वह नहीं हो सकता। मैंने अपने मालिक को जो वचन दिया है उसे रखना ही होगा। मैं एक बिका हुआ दास हूँ मेरे पास मेरा कहने को कुछ भी नहीं। नहीं नहीं मुझसे यह नहीं होगा। रानी रानी! मैं बिना कर लिये कुछ नहीं कर सकता। मैं मजबूर हूं कहते कहते उसका गला भर आया।

कर्तव्य तुम्हारे मालिक की आज्ञा। तुम्हारा अपने पुत्र के प्रति कुछ भी कर्तव्य नहीं यह मैं क्या सुन रही हूं मेरे कान बहरे क्यों नहीं हो जाते धरती क्यों नहीं फट जाती। हे भगवन्! क्या यही दिन देखने के लिए मुझे जिन्दा रखा था। हो तो तुम आखिर पुरुष जाति के ही ना। क्या टके के अभाव में मैं अपने राजा बेटे को जला भी न सकूंगी। हां एक बात है क्या मैं अपनी साड़ी का आधा हिस्सा देकर तुम्हारा कर चुका सकती हूँ ?

पुरुष हरिश्चन्द्र को ऐसा लगा मानों किसी ने उस पर एक जोर का तमाचा लगाया है। नीची नजर किए बोले—तुम धन्य

हो तारा तुमने मुझे बचा लिया अब मैं अपना कर्तव्य निभा सकूंगा ।

पर हैं ! यह क्या सुन्दरी साड़ी फाड़ भी नहीं पाई थी कि देखा आकाश से पुष्प वृष्टि के साथ भारत के सत्यवादी कर्तव्यनिष्ठ राजा हरिश्चन्द्र तारा और रोहित की जयजयकार के नारे लग रहे हैं । कितना सुखद और मनोहर था वह दृश्य । कष्टों के अथाह सागर को पार करके सत्य की कसौटी में खरे उतरे थे ! उस महापुरुष की सत्यपरायणता आज भी लोगों के हृदय में बोल रही है । आज भी सती शिरोमणि तारा की कष्ट सहिष्णुता याद कर हृदय एक बारगी दहल उठता है । धन्य है देवि ! तुम्हें । भारत माँ की लाडली तुम्हारी जैसी वीरांगना पर आज भी भारत के बच्चे बच्चे को नाज है । आज भी नाममात्र से छाती गर्व से फूल उठती है । आज भी तुम्हारी वाणी प्रकाश प्रदान कर रही है-सत्यवाणी ही अमृतवाणी है । सत्यवाणी ही सनातन धर्म है । सत्य, सद्धर्म और सद्धर्म पर संतजन सदैव दृढ़ रहते हैं ।

★

अनावरण

रामपुरी का प्रसिद्ध शिल्पी मिथिला के राज दरबार में उपस्थित हुआ। उसने अपनी उत्कृष्ट कला के भव्य से भव्य नमूनों के नक्शे पेश किये। महाराज कुंभ अपनी अनुपम सुन्दरी रानी प्रभावती तथा राजकुमारी मल्लि के साथ विराजमान थे। सरदार, उमराव अपने अपने स्थान पर यथोचित बैठे थे। महाराज को समस्त नमूने एक से एक सुन्दर दिखाई दिये। वे स्वयं इस बात का कुछ भी निर्णय नहीं कर सके कि सर्व प्रथम किस नमूने की इमारत बनवाई जाय। उन्होंने वे नक्शे महारानी को देते हुए कहा—महारानी अपनी पसन्द बताएं।

महारानी प्रभावती ने एक एक बार नक्शे देखे किन्तु एक भी तो ऐसा नहीं जिसे बाद दिया जाय। हर एक नमूने में एक नई अद्भुत विशेषता मिलती। महारानी ने नक्शे महाराज को देते हुए कहा—महाराज ही बताए उन्हें कौन सा नक्शा अधिक पसन्द आया है।

महाराज मुसकराए उन्होंने कहा—हमने तो अपनी पसन्द का निर्णय कर ही लिया है किन्तु हम पहले अपनी महारानी की पसन्द जानना चाहते हैं।

महारानी बोली—यह कैसे संभव है। भला महाराज से पहले मैं कैसे बता सकती हूं। मैं इस लायक भी तो नहीं। मेरा अहो-भाग्य महाराज ने मुझे यह सन्मान दिया।

महाराज समझ गये असलियत क्या है। महारानी भी हमारी ही तरह कुछ निर्णय नहीं कर सकी। महाराज ने कुमारी मल्लि की तरफ नक्शे बढ़ाते हुए कहा—हम यह भार अपनी पुत्री को देते हैं वह पसन्द करे इसमें से एक सब से सुन्दर नमूना।

राजकुमारी ने सगर्व इन नक्शों को लेते हुए कहा—महाराज की आज्ञा शिरोधार्य। इस असीम कृपा के लिए मैं अपने को धन्य समझती हूँ। मल्लि ने भी सब नक्शे एक के बाद एक बड़ी गंभीरता से देखे सब नक्शे एक से एक कलापूर्ण। राज-कुमारी ने कहा-महाराज की आज्ञा हो तो अपनी राय जाहिर करूं।

महाराज ने कहा—अवश्य। हम तो बहुत उत्सुक हैं अपनी राजकुमारी की राय सुनने के लिए।

राजकुमारी ने कहा—महाराज शिल्पी के नक्शे एक से एक भव्य और कलापूर्ण हैं। बहुत जल्दी किसी निर्णय पर पहुँच जाना कठिन है अतः हमारे ख्याल से इसका भार शिल्पी पर ही छोड़ देना चाहिये। ताकि शिल्पी अपनी सर्व श्रेष्ठ कला का एक नमूना बताए।

महाराज को यह राय बहुत पसन्द आई। उन्होंने महारानी की तरफ देख कर कहा—हम अपनी पुत्री की राय से एक हम सहमत

हैं । शिल्पी ! अब वह भार तुम्हारे पर रहा । अपनी कला का प्रदर्शन करो । हम एक बहुत सुन्दर चीज की तुमसे आशा करते हैं जिस तरह की दूर दूर तक कहीं नजर नहीं आए ।

शिल्पी ने सिर झुका कर कहा—महाराज की आज्ञा शिरोधार्य है ईश्वर ने चाहा तो ऐसा ही होगा ।

शिल्पी की साधना सफल हुई । एक भव्य इक मंजिला महल बन कर तैयार हो गया । जिसके चारों तरफ एक सुन्दर उद्यान लगाया गया था । महल के अन्दर की कारीगरी देखते ही बनती थी । महाराज को सूचना मिली—महल बन कर तैयार हो गया । महाराज महारानी तथा राजकुमारी मल्लि सहित प्रसिद्ध शिल्पी की अनुपम कारीगरी देखने आए । देखते देखते महाराज एक कमरे में पहुंचे देखा—राजकुमारी एक रत्न जड़ित सिंहासन पर बैठी है । महाराज महल की कारीगरी में इतने खो गए कि उन्हें भान ही नहीं रहा कि राजकुमारी उन्हीं के पीछे है । उन्होंने सोचा कि राजकुमारी थक गई अतः विश्राम के लिए बैठ गई । महाराज ने कहा—राजकुमारी थक गई तो चलो शेष फिर देखेंगे ।

राजकुमारी बोली—मैं तो नहीं थकी महाराज । अगर महाराज की इच्छा नहीं तो पधारें ।

महाराज चौंके आवाज पीछे से आई । उन्होंने मुड़ कर देखा मल्लि महारानी के साथ खड़ी है । है ! शिल्पी एक तरफ गर्दन झुकाए खड़ा है । मल्लि की मूर्ति है । सचमुच इसने मुझे छल

लिया । महाराज ने निकट जाकर बड़ी देर तक उस मूर्ति का हर तरफ से निरीक्षण किया । देखा मूर्ति अन्दर से बिलकुल थोथ है । महाराज ने बड़े सम्मान के साथ अपना बहुमूल्य गज-मुक्ता हार शिल्पी को पुरस्कार स्वरूप प्रदान किया और कहा—हम तुम्हारी कला देख कर बहुत सतुष्ट हैं ।

शिल्पी ने हार लेते हुए कहा—मैं महाराज का किस प्रकार धन्यवाद करूं? महाराज ने मुझ जैसे तुच्छ व्यक्ति को इतना बड़ा सन्मान देकर मेरी इज्जत बढ़ाई है । सब से अधिक तो मुझे इस बात की खुशी है कि महाराज एक बड़े कला प्रेमी हैं ।

राजकुमारी मल्लि के रूप गुण की प्रशंसा चारो तरफ फैल चुकी थी । राजकुमारी मल्लि भी पूर्ण यौवनावस्था को प्राप्त हो चुकी थी । पुत्री को विवाह योग्य जान कर महाराज उसके लिए योग्य वर की खोज में थे ।

भिन्न भिन्न निमित्तों से मल्लिकुँवरी के रूप लावण्य की प्रशंसा सुन कर छः देश के राजा उसके साथ विवाह करने की अभिलाषा से मिथिला की तरफ सदलबल रवाना हुए । वहा पहुँच कर उन्होंने नगर के बाहर पड़ाव डाल दिया ।

महाराज अपने राज दरबार में बैठे ही थे कि संवादवाहक ने सूचना दी महाराज की जय हो—साकेत के महाराज प्रतिबुद्ध ने सेना सहित नगर के बाहर अपना पड़ाव डाला है। इतने में दूसरे संवादवाहक ने सूचना दी—चम्पा के राजकुमार चन्द्रछाय

पञ्चाल ने अपना पड़ाव नगर के बाहर डाला है और इस तरह श्रीवत्सी के महाराज रुक्मी, वाराणसी के महाराज शंख, हस्तिनापुर के महाराज अदीनशत्रु तथा कपिलपुर के महाराज जितशत्रु के आने का भी समाचार सुनाया गया।

आखिर ये लोग एक साथ किस लिए आए हैं ? जो कुछ भी हो कोट के दरवाजे तुरन्त बन्द कर दिये जांय। द्वार पर कड़ा पहरा बिठा दिया जाय।

महाराज की जय हो। साकेत, चम्पा, श्रीवत्सी वाराणसी हस्तिनापुर, कम्पिलपुर के दूत महाराज की सेवा में हाजिर होना चाहते हैं।

महाराज के समक्ष एक गहरी समस्या उपस्थित हो गई। राजकुमारी एक और शादी के लिए छहों राजा तैयार ! जिसको इन्कार करो वही नाराज। महाराज का चेहरा तमतमा उठा उन्होंने मंत्रियों के साथ मंत्रणा की और तय हुआ युद्ध। युद्ध की रणभेरी बज उठी। सैनिक सुसज्जित हो होकर निकलने लगे। क्षण भर में समस्त नगर में युद्ध की गर्मी व्याप्त हो गई।

राजकुमारी मल्लि को जब मालूम पड़ा तो वे घबराई, यह सोच कर उन्हें और भी दुःख हुआ कि इस नरसंहार का एक मात्र कारण वही है। वह तुरन्त महाराज के सम्मुख उपस्थित हुई किन्तु महाराज तो विचारों की दुनिया में खोए हुए थे। कुमारी ने महाराज की विचार धारा को भग्न करते हुए कहा—महाराज ······ ।

महाराज—मैं जानता हूं किन्तु इसके अलावा अन्य कोई उपाय नहीं। युद्ध अनिवार्य है।

राजकुमारी ने अत्यन्त धैर्य के साथ नम्र शब्दों में कहा—किन्तु महाराज मेरा ख्याल है युद्ध के बिना भी ...... ।

महाराज सक्रोध बोले—असंभव। अन्य कोई उपाय नहीं। युद्ध, युद्ध होकर ही रहेगा। महाराज वृद्ध हो गया है किन्तु अब भी उसकी भुजाओं में इतना बल तो है कि वह ये तो क्या छह सौ से भी लड़ने का बल रखता है। अन्याय के समक्ष महाराज क तलवार कभी म्यान में नहीं रह सकती। चाहे इसके लिए बड़े से बड़ा बलिदान भी क्यों न देना पडे महाराज के पैर पीछे नहीं पड़ेगे।

राजकुमारी ने उसी प्रकार शान्ति के साथ कहा—एक बार महाराज उन छहों राजाओं को बुलाएं तो सही। मैं उनसे मिलना चाहती हूं।

महाराज ने आश्चर्य मिश्रित क्रोध में कहा—आज मैं क्या सुन रहा हूं। राजकुमारी उन राजाओं से मिलेगी जो उसके पिता के परम शत्रु हैं। जिनके विरुद्ध हमारी तलवारें म्यान से बाहर होने को छटपटा रही हैं। साश्चर्य किन्तु सगर्व महाराज ने राजकुमारी की तरफ देखा।

राजकुमारी—कसूर माफ हो। मैं अपनी धृष्टता के लिए क्षमा

चाहती हूं किन्तु फिर भी महाराज से निवेदन है कि जिस प्रकार समय समय पर महाराज ने मेरी राय मान कर मुझे गौरव प्रदान किया है। क्या महाराज मेरी यह आखिरी बात नहीं रखेंगे ? और आखिर राजकुमारी ने स्वीकृति प्राप्त कर सब राजाओं के पास अलग अलग दूत भेज कर कहला दिया कि राजकुमारी ने आपको याद फरमाया है।

यह संवाद सुन कर राजा लोग बहुत प्रसन्न हुए। वे बड़ी सजधज के साथ प्रसन्नमन राजकुमारी मल्लि से मिलने गये एक बड़ी आशा लेकर।

राजकुमारी ने पहले से ही उनके लिए वह महल निश्चित कर दिया जिसमें उसकी मूर्ति थी।

सब ने एक दूसरे को देखा और देखा राजकुमारी को। दिल में एक अद्भुत हलचल मच गई। सुना उससे कहीं अधिक सुन्दर। सब एक टक उसको देखने लगे। सेविकाओं ने बैठने का अनुरोध किया, सब लोग बैठ गए। सब के मन में एक प्रश्न उठा क्या हमारा अपमान करने के लिए ही हमें यहां बुलाया है राजकुमारी ने। उठ कर स्वागत करना तो दूर रहा। बैठने तक को नहीं कहा। किन्तु सब चुप थे। राजकुमारी के अपूर्व रूप ने इसे अधिक पनपने नहीं दिया। जब सब अपने अपने स्थान पर बैठ गए तब राजकुमारी अपनी मूर्ति के पास आकर खड़ी हो गई। साश्चर्य राजाओं ने देखा यह क्या? क्या कुंभ महा-

राज के दो कुमारियां हैं ? किन्तु सुना तो नहीं कभी। कुमारी ने बड़ी फुर्ती से उस मूर्ति से उस मूर्ति का सिर धड़ से अलग कर दिया। सिर धड़ से अलग होते ही एक महान सड़ी दुर्गन्ध सारे कमरे में फैल गई। राजकुमारी का यह नियम था कि वह प्रत्येक दिन अपने स्वादिष्ट भोजन का प्रथम कौर उस मूर्ति मे डाल देती थी अतः वह अन्न इतना सड़ गया तथा उसकी दुर्गन्ध इस भयकरता से फैली की राजाओं के लगाए हुए सुगन्धित पदार्थों का कुछ भी पता न चला। उनका सिर फटने लगा वे लोग उठना ही चाहते थे कि राजकुमारी बोली—ठहरिये आप लोगों ने अभी तक कुछ नहीं देखा। इस देह में तो इससे भी अधिक दुर्गन्ध है। यह हाड़ मास का पुतला सिर्फ ऊपर से ही सुन्दर जान पड़ता है किन्तु अगर गहराई से देखे तो इसकी अपवित्रता छिपी नहीं रह सकती। मोह के वशीभूत होकर मनुष्य अपनी विचार शक्ति खो देता है। आप लोग विचार कीजिये, एक राजकुमारी के साथ आप सब लोग शादी करना चाहते हैं, भला यह कैसे सभव हो सकता है। आप लोग धर्म से कितने गिर गए हैं जरा विचार कीजिए। ससार के इस झूठे आडम्बर ने आपको अन्धा बना रखा है। ज्ञान की आंखों से देखिये। जीवन कितना क्षणिक है। आज मैं आप लोगों के समक्ष यह प्रतिज्ञा करती हूँ कि मैं आजन्म कुँआरी ही रहूंगी। आज से मैं अपना जीवन ज्ञान की खोज और परहित के लिए अर्पण करती हूं। यदि आप लोग भी चाहें तो आइये हम सब एक

ही पथ के पथिक बन कर ज्ञान का अलख जगा दें।

राजकुमारी मल्लि की विवेक पूर्ण वक्तव्यता का असर सब पर पड़ा। वे बोले—राजकुमारी! आपको धन्य है। हम सब सहर्ष आपके पीछे हैं। आपने हम सब को सच्चा मार्ग दिखाया। आज से हम भी अपना जीवन समर्पण करते हैं। राजकुमारी एक महान् तपस्विनी के वेश में एक बहुत बड़े दल का नेतृत्व करती हुई देश के कौने कौने में ज्ञान का प्रचार करने लगी। आगे चल कर इस महान् सती ने जैनियों के उन्नीसवें तीर्थङ्कर का महान पद प्राप्त किया, जो कि राजकुमारी के लिए एक गौरव की बात थी। इन्होंने अपने जीवन काल में हजारों ही नहीं लाखों मनुष्यों को प्रतिबोध देकर उनको सही मार्ग पर लगाया। भारत की इस वीर रमणी ने तीर्थङ्कर का पद प्राप्त कर दुनिया के समक्ष एक महान् आदर्श उपस्थित किया। भारत के हर कौने में आज भी इस देवी की घर घर में पूजा होती है।

✱